DURGA SAH MUNICIPAL LIBRARY
NAINI TAL
दुर्गासाह म्युनिसिपल पुस्तकालय
नैनीताल

Class no. 910
Book no. B67P
Reg no. 3366

प्राणों की बाजी

.....मनुष्य के मन में नया ज्ञान प्राप्त करने की प्रवृत्ति बहुत तीव्र है। वह नई-नई चीजें देखने की कोशिश करता है। फिर जो चीज किसी ने नहीं देखी, वह देखने को मिले तो क्या कहना! जहां आज तक कोई नहीं गया, वहां पहुंचा जाए तो कैसा आनन्द आए! प्राणों की बाजी लगा कर भी नई चीजों को देखने की कोशिश करने वाले लोग सब जगह होते रहे हैं। इस तरह के लोग जब तक अपने काम में सफल नहीं होते, तब तक सनकी कहे जाते हैं। परन्तु जब वे सफल हो जाते हैं तो उनकी गणना संसार के श्रेष्ठ वीरों में की जाती है। उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों की खोज में जाने वालों, अनजाने समुद्र में जहाज लेकर चल पड़ने वाले कोलम्बस, हिमालय की सब से ऊंची चोटी पर चढ़ने वाले तेनसिंह, सभी की यही कहानी है.....।

प्राणों की बाज़ी

यात्रा व जीवट की साहसपूर्ण सच्ची कहानियाँ

लेखक

प्रो० विराज, एम० ए०

प्रकाशक

राजपाल एण्ड सन्ज़

कश्मीरी गेट

दिल्ली—६

प्रथम संस्करण

मूल्य : दो रुपया आठ आना

बालकृष्ण एम० ए० द्वारा युगान्तर प्रेस, डफ़रिन पुल, दिल्ली में मुद्रित

विषय-सूची

	भूमिका	...	१
१.	सुभाष की वीर यात्रा	...	५
२.	साधारण नौका द्वारा अतलान्तक पार	...	२१
३.	पृथ्वी के सर्वोच्च शिखर पर	...	३२
४.	वीरत्व की पराकाष्ठा	...	५२
५.	उत्तरी ध्रुव की खोज में	...	५६
६.	मौत से खिलवाड़	...	७३
७.	नई दुनिया की खोज	...	८८
८.	दक्षिणी ध्रुव की ओर	...	१०७
९.	नरभक्षक चीता	...	१२३
१०.	पर्ल हार्बर पर आक्रमण	...	१४१

भूमिका

साहस मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। जब से मनुष्य पृथ्वी पर उत्पन्न हुआ है, तभी से वह किसी-न-किसी तरह की साहस-यात्राओं पर निकलता रहा है। हमारे प्रागैतिहासिक पूर्वज तीर-कमान, भालों और तलवारों से बाघों, हाथियों और भालुओं का शिकार किया करते थे। बहुत बार वे शिकार को मार डालते थे और कई बार शिकार भी उन्हें मार डालता था। उस समय साहस-यात्राएँ जीवन की आवश्यकताएँ थीं।

बाद में धीरे-धीरे मनुष्य सभ्य होता गया। लोगों ने गाँव और नगर बसाए। वे मकानों में रहने लगे। इन मकानों के अन्दर आकर वन के हिंस्र-पशु उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकते थे। पर मनुष्य की साहस की प्रवृत्ति ज्यों की त्यों बनी रही। लोग हथियार लेकर जंगल में जाते। वहाँ जो पशु मिलता, उसे मार डालते। वैसे न मिलता तो, सारा दिन मेहनत करके किसी पशु को ढूँढ़ते और उसे मार डालते। इस प्रकार का साहसिक कार्य करके उन्हें एक प्रकार का आनन्द, एक प्रकार की विचित्र तृप्ति प्राप्त होती थी।

मनुष्य सदा से दो तरह के रहे हैं। एक वीर और निडर; दूसरे कायर और डरपोक। पर मज़े की बात यह है कि साहस के काम से मिलने वाला आनन्द दोनों लेना चाहते हैं। इसीलिए वीर पुरुष जहाँ केवल शेरों, बाघों, चीतों, भालुओं और बिगड़ैल हाथियों के शिकार में ही आनन्द अनुभव करते थे, वहाँ ऐसे लोगों की भी कमी नहीं थी, जो हिरनों, खरगोशों और गीदड़ों को मारकर ही साहसिक कार्य का आनन्द प्राप्त करते थे। पहले प्रकार के लोग ही यशस्वी हुए। इनकी साहस की कहानियाँ दूसरे लोगों के मन में भी साहस के काम करने की इच्छा का संचार करती थीं।

साहस की तरह ही मनुष्य के मन में नया ज्ञान प्राप्त करने की प्रवृत्ति भी बहुत तीव्र है। मनुष्य नई-नई चीज़ें देखने की कोशिश करता है। फिर जो चीज़ किसी ने नहीं देखी, वह देखने को मिले तो क्या कहना! जहाँ आज तक कोई नहीं गया, अगर वहाँ जाना मिले, तो कैसा आनन्द आए! प्राणों का जोखम उठाकर भी नई चीज़ों को देखने की कोशिश करने वाले, नई जगहों में जाने का प्रयत्न करने वाले लोग बीच-बीच में होते रहे हैं और काफी होते रहे हैं। इस तरह के लोग जब तक अपने काम में सफल नहीं होते, तब तक सनकी कहे जाते हैं। अगर वे अपने साहसपूर्ण अनुसन्धान में प्राण खो बैठते हैं, तो उनका नाम भी कोई नहीं जान पाता। परन्तु जब वे सफल हो जाते हैं, तो उनकी गणना संसार के श्रेष्ठ वीरों में की जाती है। उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों की खोज में जाने वाले नाविकों, अनजाने समुद्र में जहाज़ लेकर चल पड़ने वाले कोलम्बस, हिमालय की सबसे ऊँची चोटी पर चढ़ने वाले तेनज़िंग, राभी की यही कहानी है।

उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों की खोज हो चुकी है। हिमालय के सबसे ऊँचे शिखर को विजय किया जा चुका है। शेर, चीते और भालू भी अब मारने को उतने बाकी नहीं रहे हैं। तो क्या यह समझा जाय कि साहस के कार्यों की अब गुंजाइश नहीं रही है। ऐसा समय शायद कभी

नहीं आयेगा। नये-नये रूपों में अपने वीरत्व को प्रकट करने का अवसर सदा बना रहेगा। कुछ ही वर्ष पहले दो मनचले नौजवानों ने आधुनिक जहाजों के होते हुए भी एक मामूली किश्ती द्वारा अतलान्तक महासमुद्र को पार किया। अब भी प्रतिवर्ष हिमालय की कितनी ही चोटियों पर पहुँचने के लिए यात्राएँ की जाती हैं।

यह साहस केवल साहस के लिए है। इसमें केवल मानसिक आनन्द और ज्ञानवर्धन ही उद्देश्य है। परन्तु एक और प्रकार का साहस भी कभी-कभी विलक्षण रूप में दिखाई पड़ता है। उदाहरण के लिए द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारम्भिक वर्षों को लीजिए। भारत युद्ध में सम्मिलित नहीं होना चाहता था। पर अंग्रेजों के आधीन होने के कारण उसे न चाहते हुए भी सम्मिलित होना पड़ा। देश के ३५ करोड़ आदमी चाहते हुए भी कुछ न कर पाये। पर उन्हीं दिनों एक बरसों का रोगी युवक वेश बदलकर सरकार की सारी पुलिस और फौज को चकमा देता हुआ भारत से बाहर निकल गया और जर्मनी जा पहुँचा। उसने 'आजाद हिन्द फौज' बनाई और बाकायदा दुश्मन से लोहा लेकर देश को स्वतंत्र कराने की कोशिश की। यह नेताजी सुभाष थे। अगर वह सफल हो जाते, तो भारतीय इतिहास में उनका नाम चन्द्रगुप्त मौर्य और समुद्रगुप्त के साथ लिखा जाता।

ऐसा ही उदाहरण जापानी 'कामिकाजे' के उड़ाकुओं का है। देश की पराजय सामने दिखाई पड़ रही थी। शायद अपने प्राण दे देने से यह पराजय टाली जा सके, इस विश्वास में कितने ही उड़ाकुओं ने बमों से लदे हुए अपने विमान शत्रु के जलपोतों पर ले जाकर गिरा दिये। इन उड़ाकुओं को यह पता होता था कि शत्रु का जहाज चाहे डूबे या न डूबे, किन्तु उनकी अपनी मृत्यु सुनिश्चित है। फिर भी वे बहादुर 'मैं पहले, मैं पहले' कहते हुए इन आक्रमणों के लिए जाते थे। अन्त क्या हुआ, इसका महत्त्व बहुत कम है। उनकी वीरगाथा चिरकाल तक संसार के वीर युवकों को साहसिक कार्यों के लिए उत्साहित करती रहेगी।

इस पुस्तक में इसी तरह के कुछ कार्यों के विवरणों का संग्रह किया गया है। उद्देश्य केवल इतना है कि इन्हें पढ़कर पाठकों को इन साहसी वीरों के विषय में जानकारी प्राप्त हो और उनके मन में भी साहसिक कार्यों के प्रति अनुराग पैदा हो। यदि एक भी पाठक को इन वर्णनों से साहसिक कार्यों के लिए प्रेरणा मिले, तो लेखक कृतार्थ है।

—विराज

नेता जी की वीर यात्रा

कभी-कभी ऐसा भी होता है।

विधाता किसी व्यक्ति को धन, विद्या, बुद्धि और प्रभुत्व सब कुछ दे देते हैं, और उसके बाद उसके माथे पर 'क्रान्तिकारी' लिख देते हैं।

फिर सारा धन-वैभव एक ओर धरा रह जाता है; विद्या और बुद्धि उपेक्षित पड़ी रह जाती है; और वह व्यक्ति अपना सारा जीवन विश्व की व्यवस्था में विद्यमान बुराइयों को हटाने के लिये होम देता है। संसार के सुखों का आकर्षण तिरस्कृत नौकर की तरह एक ओर खड़ा रह जाता है।

सुभाष के साथ भी ऐसा ही हुआ। सम्पन्न घर में जन्म लेकर उन्होंने वह शिक्षा प्राप्त की, जिसे पाकर जीवन अत्यन्त सुख और निश्चिन्तता में बीत सकता था। इस सुख और निश्चिन्तता को पाने के लिये ही न जाने कितने नौजवान हर तरह की दासता, कृतघ्नता, और मित्रद्रोह तक करने को तैयार रहते हैं। पर उस निश्चिन्तता को प्रदान करने वाली सरकारी नौकरी की ओर सुभाष ने आँख उठाकर भी न देखा। जो प्रभु बनने के लिये जन्मा हो, वह नौकरी कैसे करे?

सुभाष क्रान्तिकारी था। क्रान्तिकारियों के जीवन में सुख के लिये कम स्थान होता है, और निश्चिन्तता के लिये तो बिलकुल ही नहीं। यही कारण था कि अंग्रेज़ी सरकार ने सुभाष को थोड़ी देर भी चैन से नहीं बैठने दिया। कितनी ही बार सुभाष जेल गए; वहाँ से क्षय रोग का उपहार लेकर लौटे। इलाज के लिये छोड़े गए; पर अंग्रेज़ी सरकार को सदा यह शिकायत रही कि उनकी 'बगावत' का काम एक दिन के

लिये, एक क्षण के लिए भी बन्द नहीं हुआ। जैसे भी हो, जल्दी से जल्दी देश की दासता की बेड़ियों को तोड़ डालना ही उनका ध्येय था।

१९१९ की लड़ाई में अंग्रेज़ों की सदाशयता पर विश्वास करके महात्मा गाँधी ने स्वयं अंग्रेजों के लिए फौज की भरती करवाई थी। पर युद्ध समाप्त होने पर गाँधीजी को भी निराश होना पड़ा। स्वाधीनता के स्थान पर मिला नृशंसतापूर्ण दमन। भारतीय जनता का विश्वास अंग्रेजों के वायदों पर से उठ गया।

फिर १९३९ का विश्वयुद्ध प्रारम्भ हुआ। अंग्रेजों ने फिर वायदे किए। गाँधीजी ने कहा : "तुम्हारा भरोसा हमें नहीं। हमें आज़ादी दो, नहीं तो हम सत्याग्रह करेंगे।"

सुभाष ने कहा : "सत्याग्रह से ये भूत मानने वाले नहीं हैं। इस समय तो जान लड़ा देने का अवसर है। अगर हम इस समय आज़ाद हो गए, तो हो गए, नहीं तो फिर ५० वर्ष तक हमारे आज़ाद होने का मौका नहीं आयेगा।"

सुभाष बाबू की विचार-धारा उग्र थी। वे कांग्रेस से अलग हो गए। सरकार ने उन्हें कालकोठरी स्मारक के सामने सत्याग्रह करने के अपराध में गिरफ़्तार कर लिया। सुभाष बाबू ने आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया। फलस्वरूप वह बहुत कमज़ोर हो गए और सरकार ने विवश होकर उन्हें छोड़ दिया। ये सब सन् १९४० के अन्तिम दिनों की बातें हैं।

उन दिनों युद्ध में जर्मनी की विजय हो रही थी; अंग्रेजों तथा उनके मित्रराष्ट्रों की सेनाएँ पीछे हट रही थीं। सुभाष बाबू ने निश्चय किया कि इस समय आज़ादी की लड़ाई को आगे बढ़ाने का एकमात्र उपाय यह है कि देश से बाहर जाकर अंग्रेजों के शत्रुओं से सहायता लेकर अंग्रेजों के विरुद्ध बाकायदा युद्ध किया जाए और उनके शासन को भारत से सदा के लिए उखाड़ फेंका जाए।

पर भारत से बाहर कैसे जाया जाए ? गुप्तचरों का जाल सारे देश

में फैला हुआ था। ये सभी गुप्तचर भारतीय थे। वे सुभाष बाबू को भली-भाँति पहचानते थे। अगर उनमें से कोई भी उन्हें भागने की कोशिश करते हुए पकड़ लेता, तो अवश्य ही अपनी पदोन्नति के लोभ में उन्हें पकड़वा देता। कोई अप्रसिद्ध आदमी शायद लुक-छिप कर भाग भी सके, पर इतने बड़े नेता की आकृति को तो हर कोई पहचानता है। उनका छिप कर देश से भाग निकलना असंभव-सी ही बात थी।

पर सुभाष बाबू सरकार के सारे गुप्तचरों की आँखों में धूल झोंक कर एक दिन देश से बाहर भाग ही गए। कैसे ?

कालकोठरी के स्मारक के सम्बन्ध में सत्याग्रह करके जेल जाने और जेल में अनशन करके फिर छूट आने के बाद सुभाष बाबू अपने घर पर बिलकुल एकान्त में रह रहे थे। वह अपने घर के लोगों से भी मिलते-जुलते नहीं थे। एक कमरे में दुर्गा की मूर्ति रखी थी। उसके सम्मुख बैठकर वह अपना सारा समय ध्यान और जप में ही बिता देते थे। खाने-पीने और आवश्यकता की अन्य वस्तुएँ एक पर्दे के पास रख दी जाती थीं, जहाँ से उन्हें वह उठा लेते थे। अगर उन्हें कोई बात किसी से कहनी होती थी, तो वह एक चिट पर लिखकर पर्दे के पास रख देते थे। वह चिट पर्दे को हटाये बिना ही उठा ली जाती थी। न कोई उनसे बात कर सकता था, और न मिल ही सकता था।

यह क्रम कई सप्ताह चलता रहा। २६ जनवरी के दिन सुभाष बोस के भतीजे श्री अरविन्द बोस ने देखा कि पर्दे के पास जो भोजन रखा गया था, वह ज्यों का त्यों पड़ा है। उसे किसी ने छुआ तक नहीं है। पर सुभाष बाबू के ध्यान में बाधा तो किसी तरह डाली नहीं जा सकती। प्रतीक्षा की गई···एक दिन···दो दिन···बर्तन फिर भी नहीं छुए गए। घर वाले चिन्तित हुए। चिट लिखकर रखी गई: "अगर आधे घंटे तक आपका उत्तर न मिला, तो हम कमरे में घुस आयेंगे।" उत्तर नहीं मिला। अन्त में घर के लोग उस कमरे में घुस गए। पर···

वहाँ तो सुभाष थे ही नहीं···न जीवित, न रोगी, न मृत। फिर ? क्या हुआ ? गए कहाँ ?

बहुत खोज की गई। कुछ पता न चला। किसी ने कहा, "वह कलकत्ते के रास्ते जापानी पनडुब्बी में बठकर जापान चले गए हैं।" किसी और ने कहा, "वे शान्ति की खोज में तपस्या करने के लिए हिमालय या दक्षिण की ओर चले गए हैं।" जितने मुँह, उतनी बातें।

पर सुभाष बाबू के घर वालों से अधिक उनकी फिक्र थी सरकार को। उन पर दो मुकदमे चल रहे थे। पेशी पर हाजिर होना चाहिये था। पर कहीं हों, तो हाजिर भी हों। हितैषियों ने और अहितैषियों ने बड़ी खोज की। पर कुछ पता नहीं चला।

पता चला तब, जब एक दिन बर्लिन रेडियो से सुभाष बाबू की आवाज़ सुनाई पड़ी। अंग्रेजी सरकार हाथ मल कर गई। शेर पिंजरे से बाहर निकल चुका था। पर वह बर्लिन पहुँचे कैसे ? यह कई बरस बाद, तब पता चल सका, जब काबुल के एक व्यापारी उत्तमचन्द ने इस रहस्य को प्रकट किया। वह रहस्य यह था।

एकान्त में ध्यान और जप-तप के बहाने रह कर सुभाष बाबू ने अपनी दाढ़ी बढ़ा ली थी। इससे उनकी शक्ल बहुत कुछ बदल गई थी। एकाएक पहचाने नहीं जाते थे। उस पर उन्होंने मौलवियों की तरह चूड़ीदार पायजामा और अचकन पहनी। सिर पर तुर्की टोपी रखी—इस वेश में वह शाम के समय अपने घर से बाहर निकल आए। उनके घर के दरवाजे पर पुलिस के सिपाहियों का पहरा था, क्योंकि वह अपने घर में नजरबन्द थे और उनकी हर एक गतिविधि पर पुलिस की नज़र थी। पर इस मामूली से मौलवी को घर से निकलते देखकर पुलिस वालों को सन्देह न हुआ। शायद उनका ध्यान तक उस पर न गया।

घर से निकल कर मौलवी साहब सड़क पर पहुँचे। वहाँ उनके लिए एक मोटर कार तैयार खड़ी थी। उनके साथियों ने उनके भागने की

पूरी व्यवस्था कर रखी थी। पर इस व्यवस्था का पता सम्बद्ध लोगों के अतिरिक्त अन्य किसी को न था। कार उन्हें तेज़ी से ले उड़ी और कलकत्ता से बाहर एक छोटे से स्टेशन पर जा कर उन्हें उतार दिया। वहाँ एक व्यक्ति ने उनके हाथ में पेशावर का एक टिकट थमा दिया और उन्हे ले जाकर एक सेकंड क्लास के डब्बे में बिठा दिया। गाड़ी चल पड़ी। जिसने विदा दी, न तो उसके मन का कोई भाव प्रकट हुआ, और जो विदा ले कर चल पड़ा, न उसके मन का ही।

सफर लम्बा था। डब्बे में एक सरदार जी आ चढ़े। बातचीत होने लगी। सरदार जी ने नाम पूछा, तो मौलवी साहब ने अपना नाम 'जियाउद्दीन' बताया। कहा कि वे बीमा कम्पनी के आर्गनाइज़र हैं।

सरदारजी सरल स्वभाव के व्यक्ति थे। बातचीत आसानी से निभ गई। और कोई खास घटना नहीं घटी। १७ जनवरी १९४१ के दिन रेलगाड़ी ने मौलवी जियाउद्दीन साहब को पेशावर पहुँचा दिया। स्टेशन पर स्वागत के लिए दो एक आदमी आए हुए थे। जिस नेता का स्वागत सदा तुमुल जयध्वनि से किया जाता था, उसका स्वागत केवल आँखों में चमकती हुई मुस्कराहट से किया गया। स्टेशन के बाहर मोटर खड़ी थी। मौलवी साहब एक सम्पन्न पठान के घर पहुँच कर उसके अतिथि बने।

इस पठान का घर अच्छा खासा छोटा-सा किला था। ज़मीन के नीचे तहखाने बने थे। एक सजे हुए शानदार तहखाने में सुभाष बाबू को ठहराया गया। उन दिनों ऐसे राजद्रोही को अपने घर ठहराना सचमुच बड़े संकट का काम था। पर उस पठान ने इतना संकट सिर पर लेते हुए अपने आप को धन्य समझा। जो व्यक्ति अपनी जान हथेली पर रखकर अकेला ही शक्तिशाली अंग्रेज़ी राजसत्ता से जूझने के लिये निकल पड़ा है, उसकी कुछ भी सेवा करने का अवसर पाकर कौन अपने को धन्य नहीं मानेगा? पर इसके लिये आदमी के शरीर में दिल, और उस दिल में ज़रा गर्म खून होना ज़रूरी है।

दो दिन पेशावर में आगे की तैयारी करते बीत गए। आगे का इलाका कबाइली इलाका था। इसलिये पायजामे और अचकन को उतार कर सुभाष बाबू ने सलवार, लम्बा घुटनों तक झूलता हुआ कुर्ता, वास्कट और सिर पर पठानों का-सा कुल्ला पहना। मौलवी से अब वह खान बन गए। इसी वेश में वह कुछ साथियों के साथ १६ जनवरी के दिन काबुल की ओर रवाना हो गये।

उनके साथियों में से कुछ तो केवल सशस्त्र रक्षक के रूप में थे, जो इसलिए साथ भेजे जा रहे थे, क्योंकि इस क्षेत्र में लूटमार का खतरा बहुत रहता है। यहाँ दुहरा खतरा था। यहाँ डाकुओं से बचाव करने के लिए पुलिस नहीं आती। पर हाँ, अगर पुलिस को पता चल जाता कि इस इलाके में सुभाष बाबू हैं, तो वह यहाँ से उनको गिरफ्तार आसानी से कर सकती थी।

इन सशस्त्र रक्षकों के इलावा भगतराम नाम का एक और युवक सुभाष बाबू के साथ था। इस युवक के ऊपर सुभाष बाबू को काबुल पहुंचाने और काबुल में आगे की व्यवस्था करने तक का भार था। भगतराम ने भी पठानी वेश पहना हुआ था। उसने अपना नाम रहमत खाँ रखा

था। वह पश्तो और ईरानी भाषा बोल लेता था।

पेशावर से मोटर में बैठ कर ये लोग गढ़ी नामक एक गाँव में पहुँचे। रात वहीं बिताई। अगले दिन से पैदल यात्रा शुरू हुई। सुभाष बाबू, भगतराम तथा दो सशस्त्र रक्षक पठान दिन भर चलते रहे। रास्ता थकाने वाला था।

सुभाष बाबू गूँगे और बहरे होने का अभिनय कर रहे थे। यदि उनसे कोई कुछ पूछता तो वह विचित्र हाव-भाव प्रदर्शित करते थे। अवश्य इस तरह के अभिनय का उन्होंने अपने एकान्तवास के दिनों में अभ्यास किया होगा।

अगली रात उन्होंने अद्दाशरीफ में बिताई। यह मुसलमानों का तीर्थ है। वहाँ के पीर साहब को शायद पहले से सब कुछ मालूम था। उन्होंने इन अतिथियों का प्रेम से स्वागत किया। अगले दिन जब वे आगे बढ़े, तो उनके सशस्त्र रक्षक पठान वापस लौट गए। उनके स्थान पर तीन और नए सशस्त्र रक्षक साथ हो लिए। इस प्रकार के बीहड़ मार्ग पर चलने के अभ्यस्त न होने से सुभाष बाबू को थकान बहुत अनुभव होने लगी। सारा दिन चलने के बाद वह मुश्किल से लालपुरा पहुँच सके। यहाँ एक प्रभावशाली खान के घर उनके ठहरने का प्रबन्ध था। खान ने उनका यथोचित स्वागत किया।

अगले दिन जब वह चलने लगे तो खान ने उन्हें एक पत्र दिया, जिसमें यह प्रमाणित किया गया था कि वह कबाइली प्रदेश के रहने वाले हैं और सखी साहब की यात्रा पर जा रहे हैं। यदि कहीं अफ़ग़ान सरकार के कर्मचारी रोक-थाम करें, तो यह प्रमाण-पत्र उपयोगी सिद्ध हो सकता था।

अब सवाल आया काबुल नदी को पार करने का। जिनके पास ठीक-ठीक पारपत्र वगैरह होते हैं, वे सीधे रास्ते से काबुल पहुँच जाते हैं और उन्हें नदी पार करने की आवश्यकता नहीं होती। पर सुभाष बाबू

के लिये वह सीधा रास्ता बन्द था। उस ओर जाना पुलिस के हाथ में फँसना ही था। इसलिये दूसरा तरीका अपनाया गया। चोरी-छिपे जाने वाले लोग फूली हुई मशक पर बैठकर नदी को पार करते हैं। यह काम बहुत ही सधे हुए अभ्यस्त लोगों के बस का होता है। पर सुभाष बाबू को तो हर काम अपने बस का बनाना था। यदि मगरमच्छ की पीठ पर बैठकर भी नदी पार करने की बात होती, तो भी वह 'ना' करने वाले नहीं थे। मशक पर बैठकर ही काबुल नदी पार की। वे दिन भी कड़ाके की सर्दियों के थे।

नदी के पार पहुँच कर उन्होंने फिर कोई मोटर पकड़ने की कोशिश की। सड़क पर काबुल की ओर ट्रक आ-जा रहे थे। आखिर एक ट्रक में इन्हें जगह मिल गई। ट्रक में ऊपर तक सामान भरा हुआ था। उसके ऊपर बैठकर उस कड़ाके की सर्दी में ये दोनों काबुल पहुँचे। ठंडी हवा ने इनकी हड्डियों तक को ठंडा कर दिया था।

जब वे काबुल पहुँचे, तब बर्फ़ पड़ रही थी। भगतराम भी काबुल पहली ही बार आया था। काबुल में कहाँ किस के घर ठहरा जाए, इस विषय में भी कोई पक्की योजना नहीं थी। इस लिए काबुल पहुँचकर यह समस्या उठ खड़ी हुई कि अब क्या किया जाए?

ढूंढ़ कर एक सराय का पता चलाया। एक बहुत ही गन्दी, बदबूदार कोठरी किराये पर ठहरने के लिये मिली। सर्दी से बचने के लिये अंगीठी और बिस्तर भी मंगाया गया। पर यह सब कुछ इतना घिनौना था कि देखकर रोंगटे खड़े होते थे। पर बलिदान के मार्ग पर इसके सिवाय और मिलना भी क्या था? अच्छे बिस्तर और बढ़िया भोजन घर पर क्या कम थे?

भगतराम बाजार से तन्दूर की रोटी और कबाब खरीद कर लाया। पर कबाब सुभाष बाबू ने नहीं खाया। आखिर वह चाय लाया। चाय

के साथ रोटी खाकर सुभाष बाबू ने भूख मिटाई।

अगले दिन दोनों रूसी दूतावास की खोज में निकले। सुभाष बाबू तो गूंगे और बहरे होने का अभिनय कर रहे थे। दूतावास को खोज निकालने का काम भगतराम के सिर ही पड़ा। भगतराम अत्यन्त विश्वसनीय और साहसी युवक था। इसीलिये उसे सुभाष बाबू का साथी बनाया भी गया था। परन्तु उसकी शिक्षा-दीक्षा बहुत कम थी। इसलिये दूतावास को दिन भर की खोज के बाद भी ढूंढ़ा नहीं जा सका। पर अगले दिन भटकते-भटकते उन्होंने रूसी दूतावास को खोज ही लिया। उस पर हंसिये-हथौड़े वाला लाल झंडा लहरा रहा था।

पर दूतावास के अन्दर कैसे पहुंचा जाए? दरवाजे पर अफ़ग़ान पुलिस का पहरा था। किसी ऐरे-गैरे आदमी को वे पास भी नहीं फटकने देते थे। अन्त में यह सोचा गया कि दरवाजे के बाहर कुछ दूर हट कर प्रतीक्षा की जाए। जब राजदूत की मोटर दरवाजे से बाहर निकले, तब उससे बातचीत की जाए।

प्रतीक्षा करते-करते सारा दिन बीत गया। दूतावास से कोई मोटर ही बाहर नहीं आई। वे दोनों निराश होकर चलने ही वाले थे कि राजदूत की मोटर आती हुई दिखाई पड़ी। उस पर भी रूसी झंडा फहरा रहा था। भगतराम ने आगे बढ़कर हाथ के इशारे से कार को रोका। राजदूत ने पूछा—"क्या बात है?"

भगतराम ने टूटी-फूटी ईरानी भाषा में कहा—"भारत के प्रसिद्ध नेता सुभाष बाबू मेरे साथ हैं। वह रूस जाना चाहते हैं।"

राजदूत ने अचरज के साथ भगतराम को सिर से पैर तक देखा और कहा—"वे कहां हैं?"

भगतराम ने हाथ से उस ओर इशारा कर दिया, जिस ओर कुछ दूर सुभाष बाबू खड़े थे।

राजदूत ने उनकी ओर देखा। क्षण भर सोचा और कहा—"इस बात का क्या प्रमाण है कि वह सुभाष बाबू ही हैं ?"

इतना कहकर राजदूत ने भगतराम के उत्तर की प्रतीक्षा नहीं की। मोटर चली गई। इसके साथ ही अफ़ग़ानिस्तान से सरलता से बाहर निकल पाने की आशाएँ भी चूर-चूर हो गईं। दोनों बहुत ही खिन्न होकर अपनी उसी गन्दी सराय में वापस लौट आए।

काबुल में तो और कहीं से सहायता मिल पाने की आशा नहीं थी, इसलिए एक विश्वस्त मोटर ड्राइवर के हाथ यह सन्देश पेशावर भिजवाया गया कि रूसी राजदूत की सहायता प्राप्त नहीं हो सकी है।

अभी दोनों शाम का भोजन करके बैठे थे कि एक अफ़गान उनकी कोठरी में आ पहुँचा। सुभाष बाबू तो गूँगे-बहरे थे; भगतराम पर उसने प्रश्नों की झड़ी लगा दी। तुम लोग कौन हो ? कहाँ से आये हो ? कहाँ जाओगे ? यहाँ कब से ठहरे हुए हो ? कब तक और ठहरोगे ?

भगतराम को यह पहचानते देर न लगी कि यह खुफ़िया पुलिस का आदमी है। उसने पहले से तैयार की हुई कहानी सुना दी : "यह मेरा भाई गूँगा और बहरा है। मैं इसे सखी साहब लेजा रहा हूँ। आजकल बर्फ़ पड़ रही है। रास्ते बन्द हो गए हैं। इसलिये यहाँ रुक गए हैं।"

पर पुलिस का आदमी इन बातों से सन्तुष्ट होने के लिये उनके कमरे में नहीं घुसा था। वह कहने लगा : "कोतवाली चलो। वहाँ ये सब जवाब देना।"

ऐसे समय घबरा जाना बहुत खतरनाक होता। भगतराम ने कहा : "हवलदार साहब, क्यों व्यर्थ में हमें परेशान करते हो। मेरा यह भाई बहुत बीमार है, इसलिए यह तो कोतवाली चल नहीं सकता। कहो तो मैं चला चलता हूँ।"

यह सूझ काम दे गई। पुलिस का आदमी उन्हें पहचानता नहीं था।

वह किसी और कारण से उन्हें कोतवाली ले जाने की धमकी दे रहा था। वह बोला : "अरे यार, हमें तो अफसरों का हुक्म मानना पड़ता है। गरीबों को सताने में क्या हमें आनन्द आता है ? ओह, आज सर्दी भी क्या गजब की पड़ रही है। अच्छा, कुछ चाय-वाय तो पिलाओ।"

बात साफ हो गई। भगतराम ने दो रुपये निकाल कर उसके हाथ पर रखे। सिपाही सन्तुष्ट हो कर चला गया।

पर यह बात भी स्पष्ट हो गई कि सराय निरापद जगह नहीं है। दो-एक दिन बाद वही सिपाही फिर आया और फिर पाँच रुपये लेकर टला।

सुभाष बाबू ने और सोचा-विचारा। अन्त में उन्होंने एक दिन भगतराम को इटालियन दूतावास में भेजा। इस बार वह अपने आपको जापानी दूतावास का नौकर बता कर सीधा दूतावास में अन्दर जा पहुँचा। वहाँ उसने राजदूत से कहा : "मेरे साथ सुभाष बाबू यहाँ आए हुए हैं। वह आपकी सहायता चाहते हैं।"

इटालियन राजदूत का नाम करूनी था। वह इस समाचार को सुन कर बहुत खुश हुआ। उसने कहा : "मैं आज ही अपनी सरकार को खबर देता हूँ। आशा है दो-चार दिन में ही उनके यूरोप जाने का प्रबन्ध हो जाएगा।"

उन्होंने यह भी कहा : "अगली बार मिलने के लिये तीन दिन बाद एक जर्मन व्यापारी थामस के घर आना। वहाँ तुम्हारे लिए एक बन्द लिफाफे में सन्देश होगा, उसे ले लेना।"

दिन बीतने लगे। पुलिस का सिपाही पीछे पड़ा हुआ था। आखिर भगतराम ने एक व्यापारी उत्तमचन्द से सुभाष बाबू को अपने यहाँ टिकाने का अनुरोध किया। उत्तमचन्द ने काफी बड़ा खतरा अपने सिर ले कर उन्हें अपने यहाँ टिका लिया। पर सराय छोड़ने से पहले एक दिन उसी पुलिस के आदमी ने भगतराम से १७ रुपये और एक कलाई घड़ी ले ली। यह घड़ी असल में सुभाष बाबू की थी। किसी को शक न

हो, इसलिये उन्होंने भगतराम को कलाई में बाँधने के लिये दी हुई थी।

खैर, घड़ी गई, पर जान तो बच गई। तीसरे दिन करूनी के यहाँ से सन्देश मिल गया कि उन्होंने बर्लिन और रोम को सुभाष बाबू के बारे में सूचना भेज दी थी। उनकी सरकार ने करूनी को आदेश दिया था कि वह सुभाष बाबू की हर तरह से सहायता करें। सुभाष बाबू के लिये पासपोर्ट बनवाने की कोशिश हो रही थी।

बड़ा सन्तोष हुआ। पर दिन पर दिन बीतने लगे। पासपोर्ट बन कर न आया। करूनी के यहाँ से हर बार सन्देश आता, जल्दी ही पास-पोर्ट बन जाएगा; पर देर लगती ही जा रही थी।

एक दिन चाय पीते समय कमरे का दरवाजा खुला रह गया। एक पड़ौसी ने सुभाष बाबू को देख लिया। इससे भी बुरी बात यह हुई कि उसने देखते ही उन्हें पहचान भी लिया। उसे भय का इतना आघात पहुँचा कि वह बीमार हो गया। उसने उसी दिन उस मकान को खाली करने का निश्चय कर लिया। सुभाष बाबू के सामने इसके सिवाय और कोई चारा न रहा कि फिर उसी सराय में जा कर ठहरें।

दो-तीन दिन उसी सराय में जा कर रहे। इस बीच उत्तमचन्द ने उस पड़ौसी से मिल कर उसे मनाया और समझाया। जब उन्हें भरोसा हो गया कि अब उसके द्वारा सुभाष बाबू का कोई अहित होने का डर नहीं है, तो वह सुभाष बाबू को फिर अपने घर ले आए।

करूनी साहब जो प्रबन्ध करने में लगे थे, वह किसी तरह पूरा होने में ही नहीं आ रहा था। आखिर बिलकुल उकता कर सुभाष बाबू ने यह निश्चय किया कि चाहे जैसे भी हो, किसी तरह भाग कर एक बार रूस की सीमा में पहुंच जाएँ। अगर वहाँ पकड़े भी जाएँगे, तो भी इस बात की तो सम्भावना रहेगी कि किसी दिन मास्को पहुंच कर मुक्ति पा सकते हैं। इसके लिये उत्तमचन्द ने एक मोटर ड्राइवर को तयार किया, जिसने यह ठेका लिया कि वह सही-सलामत सुभाष बाबू

को जियारत के रास्ते रूस की सीमा में पहुंचा देगा। इस रास्ते में भी नदी मशक द्वारा ही पार करनी होगी। सही सलामत का अर्थ उतना ही था, जितना कि इस तरह के गुपचुप कामों में होता है। अगर पुलिस ही किसी तरह घेर ले, तो बेचारा ड्राइवर क्या कर सकता था।

फिर भी ७०० रुपये में सौदा तय हो गया।

एक दिन उत्तमचन्द की दूकान पर जीवनलाल नामक एक व्यापारी आया। यह व्यापारी उत्तमचन्द का परिचित था। यह हर साल व्यापार के सिलसिले में काबुल आया करता था। यह प्रायः अपना सारा समय उत्तमचन्द की दूकान पर ही बैठे-बैठे बिताया करता था। हर बात को जानने की कोशिश करना, हर बात में अपनी टाँग अड़ाना इसके स्वभाव में था। उत्तमचन्द सुभाष बाबू के रहस्य को इस व्यक्ति के सामने प्रकट होने देना नहीं चाहता था। पर जीवनलाल जैसे आदमियों से कुछ भी बात छिपाना कठिन ही होता है। शिष्टता-अशिष्टता और औचित्य-अनौचित्य की कुछ भी परवाह किये बिना ऐसे लोग अपना काम किये जाते हैं।

एक दिन भगतराम और सुभाष बाबू को रूस की सीमा में पहुँचाने के लिये तैयार हुआ ड्राइवर उत्तमचन्द की दूकान पर आया। जीवनलाल उनके बारे में उत्तमचन्द से कुरेद-कुरेद कर हर बात पूछने लगा। जब उत्तमचन्द ने बात को टाला, तो वह नाराज हो गया। बाद में जब उस मोटर ड्राइवर को ७०० रुपये दिये गए, तो उस समय भी जीवनलाल दूकान पर मौजूद था। वह इन रुपयों के विषय में फिर विस्तार से पूछताछ करने लगा। उत्तमचन्द ने बड़ी मुश्किल से यह कह कर टाला कि कल सोचकर बताऊँगा। इस बीच में उन्होंने सुभाष बाबू से सलाह ली। सुभाष बाबू की राय थी कि जीवनलाल को कुछ भी नहीं बताना चाहिये।

अगले दिन जीवनलाल ने फिर रुपयों का रहस्य पूछना शुरू किया।

उत्तमचन्द ने कह दिया—"अभी तक तो मैं उस बारे में कुछ सोच ही नहीं पाया।"

जीवनलाल बहुत नाराज हो गया। पर दूकान से उठ कर नहीं गया। उसी समय इटालियन राजदूत की पत्नी दूकान में आकर एक लिफाफा उत्तमचन्द को दे गई। अपना सारा गुस्सा भूलकर जीवनलाल अब इस लिफाफे का रहस्य पूछने लगा। उत्तमचन्द ने फिर नहीं बताया। जीवनलाल बहुत ही अप्रसन्न और क्रुद्ध होकर चला गया।

पर जीवनलाल जैसे आदमी कुत्ते की तरह होते हैं। अगर उनसे प्यार किया जाए तो वे मुँह चाटना शुरू करते हैं, और अगर झगड़ा जाए, तो काटने को आते हैं। उत्तमचन्द ने सोचा कि अगर किसी तरह जीवनलाल को चुप नहीं किया गया, तो वह सब जगह कुछ न कुछ ऊटपटांग बकता फिरेगा। बहुत सम्भव है कि भेद खुल ही जाए।

उधर इटालियन राजदूत की पत्नी जो लिफाफा दे गई थी, उसमें यह हर्षजनक समाचार था कि पार-पत्र की व्यवस्था पूरी हो गई है। सुभाष बाबू के फोटो की जरूरत है। दो-चार दिन में ही सुभाष बाबू को लेने के लिए रोम से हरकारे आ जाएँगे।

अब दुविधा यह थी कि जल्दी से जल्दी उस मोटर-ड्राइवर के साथ रूसी सीमा में प्रवेश करने के लिये चल दिया जाए, या करूनी साहब की मार्फत जाया जाए। करूनी साहब की ओर से अब तक विलम्ब बहुत लगता रहा था। जिस खतरनाक हालत में सुभाष बाबू रह रहे थे, उसमें देर किसी तरह नहीं की जा सकती थी। फिर भी सुभाष बाबू करूनी साहब के किये हुए प्रबन्ध के अनुसार फोटो खिचवा आए। चुपचाप एक कार उन्हें ले गई और वहीं फिर वापस छोड़ गई।

उधर वह मोटर ड्राइवर जल्दी करने लगा। "जिस आदमी को रूसी सीमा में भेजना है, उसे बुलाओ।" दूसरी ओर जीवनलाल सारा रहस्य जानने के लिए पीछे पड़ गया। उत्तमचन्द ने मोटर ड्राइवर को तो चार-पाँच दिन के लिये टाल दिया, पर जीवनलाल को वह किसी तरह न टाल सके। अन्त में विवश होकर उसे सब भेद बताना ही पड़ा।

सुभाष बाबू यहाँ ठहरे हुए हैं, यह सुनकर जीवनलाल दंग रह गया। पर भेद जानकर ही उसने पीछा नहीं छोड़ दिया। कहने लगा—"मेरी उनसे मुलाकात भी कराओ।"

लाचार, मुलाकात भी करानी पड़ी। उसकी बातों से सुभाष बाबू पर यह प्रभाव पड़ा कि यह आदमी मूर्ख और धोखेबाज है। यह बात उन्होंने उत्तमचन्द को बता भी दी। पर अब किया क्या जा सकता था।

आखिर १५ मार्च को सुभाष बाबू को इटालियन राजदूत का यह संदेश मिला कि १८ मार्च को उन्हें रवाना होना है। १७ मार्च की शाम को वह इटालियन सहायक राजदूत करोशनी साहब के घर पहुँच जाएं।

इन विकट परिस्थितियों में रहते हुए भगतराम और उत्तमचन्द के साथ सुभाष बाबू की गहरी आत्मीयता हो गई थी। इसलिये जब विदाई का क्षण आया, तो उन्हें काफी वेदना हुई। जिन लोगों ने उनके लिये बड़े से बड़ा संकट सिर पर लिया, उनसे अलग होते ऐसा होना स्वाभाविक था। पर जाना भी था ही। क्रान्तिकारी के पथ पर विश्राम कहाँ है? भरे हृदय से उन दोनों से विदा ली।

उस दिन उन्होंने दो पत्र लिखे, एक अपने बड़े भाई शरतचन्द्र बोस के नाम और दूसरा अपनी माता जी के नाम। १७ मार्च की शाम को वह करोशनी साहब के घर पहुँच गये।

अगले दिन १८ मार्च को यूरोपियन वेश में दो जर्मनों तथा एक इटालियन यात्री के साथ वह मोटर में बैठकर रूस की ओर रवाना हो गए। अब उनके पास बाकायदा पासपोर्ट था। जिस पर उनका नाम "मिस्टर कैरेटाइन" लिखा हुआ था।

दो दिन तक उन्होंने मोटर से यात्रा की। उसके बाद रेल पर सवार होकर मास्को और मास्को से बर्लिन पहुँच गए। बर्लिन पहुँचकर उन्होंने आज़ाद हिन्द फौज का संगठन किया। जो स्वप्न उनके मन में था, वह सत्य होकर रहा। आज़ाद हिन्द फौज के सैनिकों ने बर्मा और आसाम के मोर्चों पर जिस वीरता से युद्ध किया, उसकी तुलना और कहीं मिलनी कठिन है। उनके पास साधन बहुत थोड़े थे। न खाने को काफी अन्न था, न लड़ने को अच्छे हथियार। फिर भी उन्होंने शत्रु-सेनाओं के छक्के छुड़ा दिये। देश की आज़ादी के लिये भूख मरने की प्रेरणा उन्हें नेताजी सुभाष के त्याग और तपस्या से मिलती थी।

जर्मनी हार गया, जापान हार गया। आज़ाद हिन्द फौज भी हार गई। परन्तु आज़ाद हिन्द फौज ने जो कुछ किया वह बहुत ही महान् काम था। सफलता या असफलता महानता की सही कसौटी नहीं है।

साधारण नौका द्वारा अतलान्तक पार २

अतलान्तक महासमुद्र संसार के सब से बड़े दो महासमुद्रों में से एक है। यह यूरोप और अमेरिका के बीच में फैला हुआ है। इसका न तल है और न अन्त, इसी लिये इसे 'अतलान्तक' कहा जाता है।

एक बार अमेरिका में रहने वाले दो नाविकों के दिमाग में फितूर सवार हुआ कि मामूली-सी एक किश्ती लेकर उसके द्वारा अतलान्तक समुद्र को पार करके यूरोप पहुँचा जाए। इनमें से एक का नाम था, हार्बो और दूसरे का नाम था सेमुऐल्सन। ये दोनों वस्तुतः नार्वे के रहने वाले थे और वहाँ से आकर अमेरिका में बस गए थे।

पहली बात तो यह थी कि इन दोनों को यूरोप जाने की कोई आवश्यकता नहीं थी; और अगर जाने की आवश्यकता होती भी, तो भाप से चलने वाले बड़े-बड़े जहाज़ मौजूद थे; उनमें बैठकर ये बहुत आसानी से यूरोप जा सकते थे। पर इन्हें तो और ही धुन थी।

"अगर हम मामूली किश्ती में अतलान्तक को पार करें, तो हमारा नाम सब जगह फैल जाएगा" सेमुऐल्सन ने कहा : "यूरोप में लोग उस नौका को देखने के लिए बावले हो उठेंगे, जिसमें अतलान्तक को पार किया जाएगा। अगर हम उस नौका को देखने का टिकट लगा देंगे, तो देखते-देखते हम धनकुबेर बन जाएँगे।"

धन कमाने का यह कोई बढ़िया तरीका नहीं था; क्योंकि बहुत सम्भव था कि वह छोटी-सी नौका अतलान्तक के पार न जाकर समुद्र

की तली में ही पहुँच जाए। वस्तुतः दोनों को प्रेरणा धन से नहीं मिल रही थी, बल्कि उनके मन में साहसिक यात्रा की उमंग ज़ोर मार रही थी। जिसे केवल धन ही कमाना होता है, वह नौकरी करता है, बर्तन माँजता है, और बीस तरह के काम करता है, पर इस तरह समुद्र में डूबने के लिये नौका पर सवार नहीं होता।

कुछ भी हो, बात हार्बो को भी समझ आ गई। दोनों अनुभवी नाविक थे। उन्होंने हिसाब लगाया। अगर दोनों मिलकर नाव खेते हुए प्रति दिन ५५ मील पार करते जाएँ, तो वे ६० दिन में यूरोप जा पहुँचेंगे।

हार्बो की आयु लगभग ३१ वर्ष थी और सेमुऐल्सान की २६ वर्ष। उन दोनों ने योजना को पक्का किया। आवश्यक तैयारी करने में दो साल लग गये। उन्होंने एक नौका बनवाई, जो १८ फीट लम्बी थी। उसकी बीच में अधिकतम चौड़ाई ५ फीट थी। इसके दोनों किनारे नुकीले थे। अन्दर की ओर किनारों पर दो ऐसे हवाबन्द सन्दूक बनवाए गए थे, जिनके अन्दर पानी न घुस सके। इन सन्दूकों मे खाने-पीने की सामग्री तथा अन्य आवश्यक सामान था। एक पीने के पानी की टंकी भी थी, जिसमें ६५ गैलन ताज़ा पानी भर लिया गया था। लगभग १० मन खाद्य-सामग्री भी नौका में भर ली गई। इसके अतिरिक्त चप्पू, दिग्दर्शक, लंगर, एक छोटा-सा तम्बू, संकेत से बात करने के लिए एक लैम्प, एक स्टोव, और पांच गैलन मिट्टी का तेल भी नौका में रखा गया। जब इस सब सामग्री से लदकर वह नौका रवाना हुई, तब उसका किनारा पानी से सिर्फ़ ६ इंच ऊपर था। नाव को चलाने के लिए पाल नहीं लगाया था; अर्थात् उन्हें सारा रास्ता चप्पुओं से खेकर ही पार करना था। उन्हें विदाई देने के लिए लभभग ३,००० व्यक्ति समुद्र-तट पर आए हुए थे।

वे समुद्र के खूब अभ्यस्त थे। इसलिए उन्हें समुद्र से डर भी खास

नहीं लगता था। हार्बो तो बाकायदा जहाज़ कप्तान भी रह चुका था। नौका को ठीक रास्ते पर चलाने का काम उसी के सिर रहा।

उन्होंने समुद्र में बहने वाली 'खाड़ी धारा' के साथ-साथ आगे बढ़ने का निश्चय किया, क्योंकि इससे आगे बढ़ने में काफ़ी सहायता मिल जाती। धारा का प्रवाह अपने आप नौका को आगे ले चलता।

अपनी इस नौका का नाम उन्होंने 'फावस' रखा था। ६ जून के दिन शाम के समय यह नौका रवाना हुई। लोगों ने विदाई के रूमाल हिलाए और उनके लिए मंगलकामना की। उस समय ज्वार समाप्त होकर भाटा प्रारम्भ हो रहा था।

उन्होंने नियम यह रखा था कि सवेरे आठ बजे दोनों मिलकर नौका खेना शुरू करते थे और १ बजे दोपहर तक खेते रहते थे। उसके बाद दोनों १ घंटा आराम करते और फिर खेना शुरू करते। शाम के आठ बजे तक वे फिर खेते रहते। उसके बाद सवेरे तक दोनों बारी-बारी से तीन-तीन घंटे जागते। जब एक जागता, तो दूसरा सो जाता। जो जागता रहता, वह नाव खेता रहता।

कुछ दिन तक मौसम बहुत बढ़िया रहा। पर तेज़ हवा के कारण उनका स्टोव बहुत मुश्किल से जल पाता था और बार-बार बुझ जाता था। इसलिए वे चाय भी बहुत कम पी पाते थे और बाकी भोजन भी पका पाना बहुत कठिन होता था। वह प्रायः डब्बाबन्द भोजन और कच्चे अण्डे खाकर ही गुजारा कर लेते थे।

पाँचवें दिन रात के समय एकाएक उनकी नौका को बड़े ज़ोर का एक झटका लगा। रात के अन्धेरे में भी समुद्र के पानी पर नौका के साथ-साथ चलती हुई कोई बड़ी-सी सफ़ेद चीज़ दिखाई पड़ी। सेमुऐल्सन ने चिल्ला कर हार्बो को जगाया। शार्क है हार्बो, शार्क! बहुत बड़ी है!"

शार्क मछली समुद्र में इतनी छोटी नौका के लिए दैत्य से कम नहीं होती। उसके एक धक्के से ही नौका डुबकी खा सकती थी। दोनों मिल

कर शार्क को भगाने की कोशिश करने लगे। शार्क कुछ दूर हट जाती थी, पर जरा देर बाद फिर पास आ जाती थी। दो दिन तक वह नौका का पीछा करती रही। कई बार तो वह बिल्कुल पास आकर नौका को उलटने की कोशिश करती थी। वे दोनों उसे चप्पुओं से धक्के देकर परे रखते थे। दो दिन के बाद शार्क ने न जाने क्या सोचकर नौका का पीछा छोड़ दिया।

१५ जून को सोमवार था। उस दिन एकाएक बड़े जोर की पुरवा हवा चलने लगी। लहरें उछलती हुई नौका के ऊपर तक आने लगीं। दोनों ने नाव को खेने की काफी कोशिश की, परन्तु हवा के मुकाबले में नाव किसी तरह आगे न बढ़ सकी। आखिर हार कर दिन के नौ बजे उन्होंने लंगर समुद्र में डाल दिया। इसका फल यह हुआ कि नाव जहाँ की तहाँ स्थिर खड़ी हो गई। शाम को ५ बजे जाकर हवा कुछ धीमी हुई और उन्होंने फिर खेना शुरू किया। उस सारे दिन जी-तोड़ मेहनत करने के बाद भी उनकी नाव आगे बढ़ने के बजाय २५ मील पीछे ही लौट गई थी। पर हवा के विरुद्ध वे कर भी तो कुछ नहीं सकते थे।

जब वे खेते-खेते न्यूफाउंडलैंड के किनारे पहुँचे, तो उनकी नाव ह्वेल मछलियों के झुंड में से होकर गुजरी। उस समय समुद्र बिल्कुल शान्त था। पानी का तल शीशे की तरह सपाट और चिकना दिखाई पड़ रहा था। ये विशालकाय दैत्याकार मछलियाँ सूर्य की धूप में पानी पर खेल रही थीं। तीस से अधिक ह्वेल मछलियाँ उन्होंने वहाँ गिनीं। इनमें से किसी भी एक ह्वेल की थपेड़ उनकी छोटी-सी नौका को चूर-मुर्र कर डालने के लिये काफी थी। पर सौभाग्य से ह्वेलें अपनी जल-क्रीड़ा में ही मस्त रहीं। उन्होंने इस नौका की ओर ध्यान नहीं दिया और ये दोनों नाविक जैसे-तैसे जल्दी-जल्दी खेकर नाव को दूर निकाल ले गए।

इसके दो दिन बाद उन्हें एक जर्मन जहाज 'फर्स्ट बिस्मार्क' दिखाई पड़ा। जहाजी शिष्टाचार के अनुसार हार्बो ने अपनी नौका पर अमेरिकन

झंडा फहरा कर उस जहाज़ का ध्यान आकृष्ट किया। जहाज़ के कप्तान की निगाह उस झंडे पर पड़ी। उसने भी अपने जहाज़ पर जर्मनी का झंडा फहराया और जहाज़ को नौका की ओर ले आया। नौका से कुछ दूर आकर वह रुक गया, जिससे जहाज़ के चलने से उठने वाली लहरों से नौका डावांडोल न होने लगे। वहाँ से उसने पूछा, "क्या तुम्हारा जहाज़ टूट गया है ?"

"नहीं, हम इस नौका द्वारा यूरोप जा रहे हैं।"

जहाज़ के मुग़ाफिर कुतूहल से इन विचित्र साहसी नाविकों को देखने के लिये इकट्ठे हो गए और जब नौका धीरे-धीरे जहाज़ से दूर हटने लगी, तो उन्होंने तालियाँ बजा कर इन दोनों नाविकों को शाबाशी दी।

२१ जून को हार्बो ने हिसाब लगाकर देखा कि वे ६६२ मील पार कर आए थे। १ जुलाई को उन्हें कनाडा का मछलीमार जहाज़ 'लीडर' दिखाई पड़ा। वे उसके पास पहुँचे। लीडर के कप्तान ने उन्हें अपने जहाज़ पर भोजन के लिये निमंत्रित किया। पिछले तीन सप्ताहों में उन्हें पहली बार अच्छी तरह पका हुआ भोजन खाने को मिला। अपनी नौका पर तो स्टोव ठीक तरह न जल पाने के कारण वे भोजन पका ही नहीं पाते थे।

७ जुलाई को फिर पश्चिम की ओर से तेज़ हवा चलने लगी। इसके सिवाय फिर कोई उपाय नहीं था कि लंगर डाल कर नौका को स्थिर कर दिया जाए। इस तेज़ आँधी का वह आगे बढ़ने के लिये लाभ नहीं उठा सकते थे, क्योंकि यह निश्चित नहीं था कि यह हवा उन्हें कहाँ लेजा फेंकेगी। दो दिन और दो रात वे लंगर डाले पड़े रहे। पर ९ जुलाई को सवेरे से ही लहरों ने भयानक रूप धारण करना शुरू किया। पानी बार-बार नाव में भरने लगा। एक आदमी निरन्तर पानी निकालने में जुटा रहा और दूसरा चप्पू चलाकर नाव की दिशा ठीक करता रहा। नाव की सामने की नोक हवा के रुख की ओर रखना आवश्यक था।

अगर हवा नौका पर पार्श्व से आकर लगती, तो वह क्षण-भर में ही नाव को उलट देती। उस दिन नाव केवल इसलिए डूबने से बची रही, क्योंकि उसमें दो हवाबन्द सन्दूक थे, जिनके अन्दर पानी नहीं घुस सकता था। इन सन्दूकों ने ही नाव को पानी के ऊपर तैराए रखा।

रात को नौ बजे के लगभग सेमुऐल्सन ने एक विशाल लहर अपनी ओर बढ़ती हुई देखी। "लहर!" वह चिल्ला उठा।

हार्बो ने सिर उठाकर देखा, "इससे बचकर हम किसी तरह नहीं निकल सकते!"

अगले ही क्षण नौका उलट गई। दोनों नाविक उस ठंडे, बर्फीले समुद्री जल में अपने प्राण बचाने के लिये तैरने लगे। पर यह घटना आकस्मिक नहीं थी। लहरें सवेरे से ही उठ रही थीं। इसलिये उन्होंने यह सोच लिया था कि अगर नाव उलट गई, तो उन्हें क्या करना होगा। उन्होंने तैरने वाली पेटियाँ (लाइफ बैल्ट) बाँधी हुई थीं। बीस गज लम्बी डोरियों द्वारा ये पेटियाँ उनकी नौका से बँधी हुई थीं। कुछ ही

देर के प्रयत्न के बाद दोनों फिर नौका तक जा पहुँचे। नौका डूबने वाली नहीं थी। वह केवल उलट गई थी और अब उलटी हुई दशा में ही तैर रही थी। नौका के पास पहुँच कर दोनों उसका सहारा लेकर तैरने लगे। जब लहरों का वेग कुछ कम हुआ, तब उन्होंने बड़ी मेहनत करके नौका को सीधा किया और उस पर चढ़ गये। दोनों थक कर चूर हो गए थे। पिछले तीन दिन और तीन रात में उन्हें एक मिनट भी सोने का अवसर नहीं मिला था। अगले दिन सवेरे तक समुद्र बहुत कुछ शान्त हो गया।

उन्होंने अपने गीले कपड़े उतार दिए और नौका के सन्दूकों में से सूखे कपड़े निकाल कर पहने। सैमुऐल्सन बैठकर नौका खेने लगा और हार्बो तीन घंटे के लिए सो गया। मुर्दा भी शायद इतनी गहरी मीठी नींद न सोता हो, जैसी हार्बो को आई थी। तीन घंटे बाद जब सैमुऐल्सन ने उसे जगाया, तो हार्बो का सारा शरीर सूज कर अकड़ गया था। हिल-जुल पाना तक उसके बस का नहीं था। सैमुऐल्सन ने उसे सहारा देकर बिठाया। धीरे-धीरे उसके जोड़ खुलने शुरू हुए और कोई घंटे भर बाद वह इस योग्य हुआ कि थोड़ा-बहुत चप्पू चला सके। उसके बाद सैमुऐल्सन सो गया।

जब सैमुऐल्सन उठा, तब उसकी भी वही दशा हुई, जो जागने पर हार्बो की हुई थी। पर धीरे-धीरे उसकी हालत भी सुधर गई। ७२ घंटे के बाद यह उनकी पहली नींद थी।

उसके बाद मौसम अच्छा रहा। पर धूप और समुद्र के पानी के कारण उनको बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। इनके कारण उनके हाथों की खाल उतर गई थी, और माँस बाहर निकल आया था। जब उस पर समुद्र का खारा पानी छूता था, तो इतना दर्द होता था कि बस मजा ही आ जाता था। जब उनकी नौका उलटी थी तो उनका बहुत-सा सामान समुद्र में डूब गया था।

१५ जुलाई को उन्हें एक जहाज दिखाई पड़ा। उसका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए उन्होंने एक कम्बल को चप्पू में बाँधकर झंडे की तरह हिलाना शुरू किया। झंडा तो अब उनके पास रहा ही नहीं था। लगभग एक घंटे बाद उस जहाज ने इनको देखा और वह धीरे-धीरे इनके पास आया। यह जहाज नार्वे का था। जहाज के नाविकों ने इन दोनों को जहाज पर बुलाकर खूब सत्कार किया। उन्हें बढ़िया भोजन कराया गया और उनकी नाव पर नई खाद्य-सामग्री लाद दी गई। पानी की टंकी में पीने का नया ताजा पानी भर दिया गया।

नाव फिर आगे चली। एक दिन की बात है कि दोपहर के समय हार्बो को अचानक कुछ बेचैनी-सी अनुभव हुई। वह एकाएक न समझ सका कि बात क्या है; पर ज्यों ही उसकी दृष्टि पश्चिम की ओर उठी, तो वह भय के मारे सन्न रह गया। कोई आधा मील दूर एक विशाल जलबवंडर उठ रहा था। इस जलबवंडर की घूमरघेरी अभी प्रारम्भ ही हुई थी और यह तेजी से चक्कर काटता हुआ धीरे-धीरे इस नाव की ओर बढ़ रहा था।

जलबवंडर समुद्र में होने वाला प्रकृति का भयंकरतम उत्पात है। जिस प्रकार स्थल पर बवंडर में हवा की घूमरघेरी बन जाती है, और चक्कर काटती हुई हवा में पेड़ और मकान तक उखड़ कर आकाश में उड़ जाते हैं, उसी प्रकार जब समुद्र में जलबवंडर प्रारंभ होता है, तब चक्कर काटती हुई तेज़ हवा के प्रवाह के कारण पानी की एक ऊँची घूमरघेरी समुद्रतल से बीसियों गज़ ऊँची खड़ी हो जाती है। इस घूमर-घेरी का पानी बहुत तेज़ी से चक्कर काटने लगता है। इस जलबवंडर में एक बार फँस जाने के बाद बड़े से बड़े जहाज़ का बच पाना असम्भव हो जाता है।

इस जलबवंडर का एक विशाल सूँड-जैसा भाग आकाश में उड़ते

एक बादल से नीचे की ओर लटका हुआ था। यह विशाल सूँड चक्कर काटती हुई धीरे-धीरे पानी की ओर बढ़ रही थी। इस सूँड की गति के कारण समुद्र के पानी में भी उल्टी भँवर बननी शुरू हो गई थी। चक्कर काटता हुआ पानी इस सूँड की ओर ऊपर को उठने लगा था। हार्बो और सैमुऐल्सन दोनों आश्चर्य और भय से आँखें फाड़े इस विचित्र दृश्य की ओर देखते रह गए।

जलबवंडर का वह विशाल सूँड-जैसा भाग नीचे की ओर बढ़ता जाता था। कभी ज़रा देर के लिये वह वापस ऊपर को हट जाता और फिर नीचे की ओर बढ़ने लगता। चक्कर काटते हुए पानी की आवाज़ इस प्रकार सुनाई पड़ने लगी, जैसे पास ही कहीं ज़ोर का प्रपात गिर रहा हो। पानी का एक बहुत बड़ा खम्भा-सा तेज़ी से घूमता हुआ आकाश की ओर उठने लगा। उसमें से बिखर-बिखर कर गिरता हुआ झाग और पानी की बड़ी-बड़ी फुहारें अब साफ दिखाई पड़ने लगीं। पानी का खम्भा क्षण-प्रति-क्षण ऊँचा और नीचा होने लगा। अन्त में ऊपर से नीचे की ओर आती हुई बादल की सूँड और नीचे उठता हुआ पानी का खम्भा मिलकर एक हो गए। इनके मिलकर एक होने के साथ ही समुद्र के पानी में भयानक उथल-पुथल शुरू हो गई। जलबवंडर की भँवर का ज़ोर दूर-दूर तक के पानी को चक्कर देने लगा। चक्कर काटता हुआ पानी दूर तक ऊपर चढ़ता और फिर फुहारों के रूप में टूट-फूट कर नीचे गिरने लगता। हवा की तेज़ी, लहरों के गर्जन और गिरते हुए पानी के कारण एक विचित्र, किन्तु डरावना शोर होने लगा।

तभी पानी के इस खम्भे की मोटाई भी बढ़नी शुरू हो गई। समुद्र-तल से लेकर आकाश तक यह घूमता हुआ जल-स्तम्भ विकराल ताँडव-नृत्य-सा करने लगा। सबसे भयंकर बात यह थी कि यह जलबवंडर धीरे-धीरे इनकी नौका की ओर आता जा रहा था। इन दोनों ने जल्दी-जल्दी

खेकर नौका को जलबवंडर से दूर ले जाने की कोशिश की, किन्तु शीघ्र ही उन्हें मालूम हो गया कि यह उनके बस की बात नहीं है। हार्बो ने कहा : "यदि इस पर तोप छोड़ी जाए तो यह जलबवंडर टूट कर गिर सकता है। पुराने नाविक जलबवंडर को दैत्य समझते थे और उस पर तोपें छोड़ते थे। बहुत बार तोप के गोलों से जलबवंडर की चक्राकार गति भंग हो जाती थी, और पानी का खम्भा एकाएक टूट कर गिर पड़ता था। वे लोग समझते थे कि दैत्य तोप के गोले से मर गया है। पर हमारे पास तो सिर्फ बन्दूक है। बन्दूक की गोली से इस पर कोई असर होने वाला नहीं है।"

रक्षा का और कोई उपाय इनके सामने नहीं था। यदि वह जल-बवंडर थोड़ा और पास आ जाता, तो शायद इनकी नौका भी उसके घुमाव में पड़ कर पानी के खम्भे के साथ-साथ आकाश में ऊपर पहुँच गई होती और वहाँ से गिरने पर उसकी क्या दशा होती, कह पाना कठिन है। पर इनका भाग्य अनुकूल था। एकाएक जलबवंडर की गति घटने लगी। पानी का खम्भा तेज़ी से नीचे की ओर गिरने लगा और कुछ ही देर बाद वह घटता-घटता समुद्र-तल तक गिर गया। जलबवंडर इन दोनों को केवल आतंकित करके ही समाप्त हो गया। दोनों ने मुक्ति की सांस ली और फिर आगे की ओर बढ़ने लगे।

आगे की यात्रा में उल्लेखनीय कोई खास बात नहीं हुई। मौसम ठीक रहा। प्रति दिन लगभग पैंसठ मील तय करते हुए वे १ अगस्त को सेंट मेरी के बन्दरगाह में जा पहुँचे। वहाँ अमेरिकन राजदूत ने उनका स्वागत किया। केवल एक दिन का विश्राम करके वे फ्रांस के बन्दरगाह लाहावरे के लिये रवाना हो गए। यह बन्दरगाह २५० मील दूर था। ७ अगस्त को जब उनकी यह छोटी-सी नौका लाहावरे पहुँची तो उनके स्वागत के लिये हज़ारों फ्रांसिसी वहाँ एकत्र थे। सैमुऐल्सन और हार्बो

का नाम अखबारों की चर्चा का विषय रहा। परन्तु दोनों ने "खूब धन कमाने" की जो आशाएँ बाँधी थीं, वे पूरी न हुई। उनकी नौका को देखने के लिये बहुत लोगों ने टिकट खरीदे भी, पर उनसे उनका अपना खर्च ही निकल पाया, अधिक कुछ नहीं।

परन्तु एक जरा-सी नौका लेकर अतलान्तक को पार करने के साहस का मूल्य क्या ताँबे और चाँदी के टुकड़ों द्वारा आँका जा सकता है?

पृथ्वी के सर्वोच्च शिखर पर ३

भारत के उत्तर में १५०० मील तक हिमालय की बर्फीली चोटियों की शृंखला फैली हुई है। जितनी ऊँची हिम से ढकी हुई चोटियाँ इस प्रदेश में हैं, उतनी संसार में अन्यत्र कहीं नहीं हैं। कंचनचंगा, नन्दादेवी, कामेट, गौरीशंकर, मकालू, बद्रीनाथ और केदारनाथ की चोटियाँ सब की सब २८,००० फीट से अधिक ऊँची हैं। इनमें से कोई २३ हजार, कोई २६ हजार और २७ हजार फीट की भी हैं। परन्तु इन सब हिमशिखरों की रानी है एक २९,१४० फीट ऊँची चोटी, जिसका नाम है—चोमोलुंगमा। चोमोलुंगमा तिब्ती भाषा का शब्द है और इसका अर्थ ही है—पर्वतों की रानी। वैसे तो जिन लोगों ने इस शिखर का यह नाम रखा था, उन्हें अवश्य ही यह मालूम था कि यह हिमालय की सबसे ऊँची चोटी है, परन्तु शिक्षित जगत् को इस सबसे ऊँचे शिखर का पता पहले पहल दिया 'सर्वे आफ इंडिया' विभाग के श्री राधानाथ सिकदर ने। पर उस समय सर्वे विभाग के अध्यक्ष कोई ऐवरैस्ट महाशय थे। उन्हीं के नाम पर इस विश्व से सर्वोच्च शिखर का नामकरण कर दिया गया। चोमोलुंगमा को लोग ऐवरैस्ट शिखर के नाम से जानने लगे।

इन बर्फ से ढकी हुई चोटियों के प्रदेशों में मनुष्य का निवास नहीं है। वहाँ न वनस्पतियाँ हैं, और न पशुपक्षी ही जीवित रहते हैं। किम्वदन्ती है कि इन प्रदेशों में देवता रहते हैं, और अपने प्रदेशों में मनुष्य का आगमन उन्हें सह्य नहीं है। परन्तु मनुष्य को भी इन विचित्र

अनदेखे शिखरों तक पहुँचने की धुन रही है। इस प्रयास में कितने साहसी युवकों ने अपने प्राणों की आहुतियाँ चढ़ा दी हैं। इनके ऊपर पहुँचने के लिए एक के बाद एक बीसियों अभियान किए गए हैं।

इन हिम-प्रदेशों में जाना और शिखरों पर चढ़ना सरल कार्य नहीं है। इन शिखरों पर चढ़ने वाले लोगों को जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, उनकी कल्पना भी वहाँ गए बिना मैदानों में रहने वाले लोग नहीं कर सकते।

इन शिखरों पर चढ़ने के लिए सबसे पहले तो १६० मील का लम्बा पहाड़ी मार्ग तय करके इनकी तलहटी तक पहुँचना होता है। यह यात्रा बहुत थकाने वाली होती है, क्योंकि इस रास्ते को पैदल ही पार करना पड़ता है। घोड़े काम नहीं दे सकते। मौसम खूब गर्म होता है और मलेरिया का प्रकोप किसी भी समय हो सकता है। ज्यों-ज्यों रास्ता ऊपर चढ़ता जाता है, त्यों-त्यों मौसम तेज़ी से ठंडा होता जाता है। १८ मील के सफर में ही अत्यन्त गरमी का क्षेत्र अत्यन्त ठंड के क्षेत्र में परिवर्तित हो जाता है। कुछ लोगों को १० हज़ार फीट ऊँचाई पर पहुँच कर बेचैनी और मिचली शुरू हो जाती है और कुछ को १७ हज़ार फीट की ऊँचाई पर पहुँच कर। २० हज़ार फीट पर सभी आरोहियों को घबराहट, बेचैनी और जी मिचलाने की शिकायत होने लगती है। हर रोज़ कुछ न कुछ साथी पीछे छूटने लगते हैं। बीस हज़ार फीट तक पहुँचते-पहुँचते गिने-चुने साथी ही बाकी रह जाते हैं।

११ हज़ार फीट तक बड़े वृक्ष मिलते हैं। १४ हज़ार फीट तक छोटी झाड़ियां चलती हैं। १७ हज़ार फीट तक कहीं-कहीं हरियाली दिखाई पड़ जाती है। पर उसके आगे हिम का अखंड साम्राज्य प्रारम्भ हो जाता है। न कोई वनस्पति दिखाई पड़ती है और न कोई प्राणी। हाँ, आकाश में दाढ़ीवाले गिद्ध २३ हज़ार फीट की ऊँचाई तक भी

उड़ते दिखाई पड़ते हैं। इसके अतिरिक्त सब ओर मृत्यु की-सी शून्यता व्याप्त रहती है।

पर यह शून्यता भी सदा बनी नहीं रहती। जब चाहे हिम देवता अपनी भयंकर क्रीड़ा प्रारम्भ कर देते हैं। 'धड़ड़ धड़ड़, धड़ाम पड़ाम!' बड़ी-बड़ी बर्फ की चट्टानें टूट कर गिरने लगती हैं। एक चट्टान का टूटना जैसे इस रोमाँचकारी खेल के प्रारम्भ का संकेत होता है। एक चट्टान के टूटने की आवाज़ को सुनकर दूसरी टूटती है, दूसरी को सुनकर तीसरी, और इसी तरह यह क्रम तब तक चलता रहता है, जब तक इस खेल से हिम-देवताओं का मन नहीं भर जाता।

ज्यों-ज्यों आरोही ऊपर चढ़ते जाते हैं, त्यों-त्यों हवा हलकी होती जाती है। साँस लेने में कठिनाई होती है। शरीर का बल और बोझ घटने लगता है। जो शेरपा कुली १० हज़ार फीट की ऊँचाई पर १॥ मन बोझ उठा कर आसानी से चल लेते हैं, वे यहाँ पाँच सेर से अधिक बोझ नहीं उठा पाते। मामूली स्टोव, ओषजन के उपकरण और कैमरे का बोझ भी बहुत अधिक प्रतीत होने लगता है।

सर्दी असह्य होती जाती है। हवा के तेज़ तूफान १०० मील प्रति घंटे की चाल से चलने लगते हैं। एकाएक बर्फ पड़ने लगती है। चढ़ाई बिल्कुल सीधी और खड़ी है। हर अगला नया कदम रखने के लिए बर्फ को कुल्हाड़ी से काट कर जगह बनानी पड़ती है। अगर कदम रखा गया और आरोही फिसल गया तो···तो फिर नीचे सैंकड़ों-हज़ारों फीट गहरी खाई में। इसलिए हर आरोही की कमर में रस्सी बंधी होती है, जिसके द्वारा फिसला हुआ व्यक्ति अन्य साथियों की सहायता से फिर संभल सकता है।

इसी तरह की और भी अनेक कठिनाइयां होती हैं। किन्तु कठिनाइयां वीरों की राह नहीं रोक सकतीं। जब तक चोमो लुंगमा के

ऊपर तेनसिंह और हिलेरी पहुँच नहीं गए, तब तक उस पर बार-बार चढ़ाई की ही जाती रही।

चोमोलुंगमा (ऐवरैस्ट) शिखर पर पहला अभियान १९२१ में किया गया था। इस अभियान के नेता कर्नल हावर्ड बरी थे। इस अभियान का एक यात्री मैलोरी २३,००० फीट की ऊँचाई तक पहुँचने में सफल हुआ। इस यात्रा में एक सदस्य बीमार होकर मर गया। यात्रा का लाभ केवल इतना हुआ कि चोमोलुंगमा के ऊपर तक पहुँचने के लिए एक मार्ग की स्पष्ट रूपरेखा मालूम हो गई।

एक महीने तक यात्रा करने के बाद ये लोग खारता घाटी में जा पहुँचे। यहाँ इन्होंने अपना आधार शिविर बनाया। यहाँ से वे इधर-उधर जा-जाकर चोमोलुंगमा पर चढ़ने के रास्ते की खोज करने लगे। इसके साथ ही कुलियों को बर्फ पर चलने का अभ्यास कराना आवश्यक था। वैसे तो ये शेरपा कुली अत्यन्त बलिष्ठ और फुर्तीले थे, परन्तु इन्हें बर्फ पर चढ़ने का अभ्यास नहीं था।

कुछ दिन बाद २०,००० फीट की ऊँचाई पर इन्होंने एक अगला शिविर बनाया। अब आगे बर्फ ही बर्फ थी। पहाड़ों की चोटियों से हिमनद धीरे-धीरे नीचे की ओर सरक रहे थे। इन हिमनदों पर चलकर ही ऊपर के शिखरों पर पहुँचना होता है। कहीं इस बर्फ के बीच में दरारें और गहरी खाइयाँ होती हैं। यहाँ अगर एक कदम गलत रखा गया, तो उसका अर्थ मृत्यु ही होता है।

इस २० हज़ार फीट के शिविर पर रहते हुए ये लोग इस जलवायु में रहने के अभ्यस्त भी हो चले। इस तरह का अभ्यस्त होना बहुत आवश्यक होता है। ऊपर के प्रदेश में वायु में ओषजन कम होती है। इस लिये इस प्रदेश में पहले-पहल पहुँचने पर कई तरह के रोग-लक्षण प्रकट होने लगते हैं। जी मिचलाता है, नींद नहीं आती, सिर में दर्द होने लगता है, थकान बहुत अधिक अनुभव होती है, इत्यादि। ज्यों-ज्यों आरोही

ऊपर और ऊपर चढ़ते जाते हैं, त्यों-त्यों ये लक्षण उग्र और उग्रतर होते जाते हैं। पर कुछ समय तक इस प्रदेश में रहने से शरीर ठंड और हलकी हवा में रहने का अभ्यस्त हो जाता है।

खारता घाटी के ऊपरी भाग में एक हिमनद है, जो सीधा चोमोलुंगमा से ही नीचे की ओर आ रहा है। इस हिमनद पर चढ़ते हुए इन आरोहियों ने अनेक पशुओं के पदचिह्न बर्फ में बने देखे। बहुत से पदचिह्न तो लोमड़ियों और खरगोशों के थे, पर कुछ पदचिह्न बहुत विचित्र थे। ये पदचिह्न हिमदानव के बताये गये। हिमदानव को इस प्रदेश के लोग 'यति' कहते हैं। कहा जाता है कि यह गुरिल्ले के समान एक पशु होता है। इसके सारे शरीर पर लम्बे बाल होते हैं। आज तक किसी भी यूरोपियन यात्री ने 'यति' को नहीं देखा है। पहाड़ी लोगों का विश्वास है कि 'यति' को देखने के बाद कोई मनुष्य जिन्दा नहीं बच सकता।

हावर्ड बरी के अभियात्री दल में सबसे अधिक उत्साही आरोही जार्ज लीघ मैलोरी था। पहले खारता घाटी के हिमनद के साथ ऊपर चढ़ने की कोशिश की गई। पर कुछ दूर चलने पर उसमें इतनी गहरी दरारें और खाइयाँ दिखाई पड़ीं कि उनके पार सामान पहुँचा पाना असम्भव था। और अगर सामान साथ-साथ न पहुँचे, तो आगे बढ़ना किस तरह सम्भव हो सकता है? आखिर मैलोरी ने दूर-दूर तक चढ़कर एक और हिमनद का पता चलाया। इस हिमनद का नाम रोंगबुक हिमनद है। यह चोमोलुंगमा से उत्तर-पूर्व की ओर को नीचे आता है। इसके नीचे रोंगबुक घाटी फैली हुई है। यह हिमनद बहुत गहरा है। जब आरोही इसमें चढ़ने लगे, तो मीलों तक तो उन्हें अपने दोनों ओर सिवाय बर्फ़ीली चोटियों के और कुछ भी दिखाई नहीं पड़ा। अन्त में चलते-चलते वे एक ऊँचे स्थान पर पहुँचे। यहाँ पहुँचते ही उन्होंने देखा कि हिमालय का सर्वोच्च शिखर चोमोलुंगमा उनके सामने खड़ा है। वहाँ से हिमालय की और भी बहुत-सी चोटियाँ दिखाई पड़ रही थीं, जिनकी

"चाई २३ हज़ार से लेकर २६ हज़ार फीट तक थी। परन्तु उनमें से कोई भी चोटी चोमोलुँगमा के कन्धे तक भी आने वाली नहीं थी। उन सबके बीच में राजसी शान के साथ यह शिखर गर्व से माथा ऊँचा किये खड़ा था। इसके सामने रहते नज़र अन्य शिखरों की ओर जाती ही नहीं थी।

मैलोरी और आगे बढ़ा। वह २३,००० फीट की ऊँचाई तक पहुँच गया। वहाँ से उसने निगाह डालकर देखा कि उत्तर-पूर्व की ओर से बर्फ की एक नुकीली दीवार चोमोलुंगमा के बिल्कुल ऊपरी भाग तक चली गई है। इस दीवार के सहारे-सहारे शायद शिखर के ऊपरी सिरे तक पहुँचा जा सके। अभी दो मील की खड़ी चढ़ाई और बाकी थी। अभी शिखर का ऊपरी भाग ६,००० फीट और ऊँचाई पर था।

इस खोज और छानबीन में ही बहुत दिन बीत गए। बरसात का मौसम आ गया। बंगाल की खाड़ी से बादलों को लेकर मानसूनी हवाएँ उठेंगी और फिर सारे हिमालय पर वर्षा, तूफान और बर्फ का आक्रमण शुरू हो जाएगा। उससे पहले ही नीचे लौट आना आवश्यक था। चोमोलुँगमा पर बिना चढ़े ही हावर्ड बरी का दल वापस लौट आया। किन्तु रास्ते को देख लेने का महत्वपूर्ण काम उसने कर लिया था। अनेक उपयोगी नक्शे बना लिए गए थे। अगली बार जब फिर चोमोलुँगमा पर चढ़ाई का प्रयास किया जाएगा, तब ये नक्शे कितने उपयोगी सिद्ध होंगे।

१९२२ में ब्रिगेडियर जनरल ब्रूस के नेतृत्व में फिर एक आरोही दल चोमोलुँगमा को विजय करने के लिए चला। इस बार ये लोग सीधे रोंगबुक हिमनद पर ही पहुँचे। पर मौसम उनके अनुकूल न था। बहुत अधिक बर्फ पड़नी शुरू हो गई थी। आगे बढ़ना बुद्धिमत्ता नहीं थी। पर मैलोरी को आगे बढ़ने की धुन थी। वह कुलियों को साथ लेकर चला।

बर्फ पर चढ़ते हुए प्रक्रिया यह होती है कि आगे चलने वाला व्यक्ति एक कुल्हाड़ी से बर्फ को काटकर पैर रखने लायक जगह बनाता है। जब वहाँ जगह बन जाती है, तो वह उससे ऊपर फिर बर्फ काटकर पैर रखने की जगह बनाता है। इस तरह बर्फ में सीढ़ियाँ-सी बनती चली जाती हैं। इन जगहों पर पैर रखते हुए पीछे चलने वाले लोग आसानी से चढ़ते चले आते हैं। क्योंकि आगे चलने वाले व्यक्ति को सबसे अधिक मेहनत करनी पड़ती है, इसलिए आगे चलने वाले व्यक्ति जल्दी-जल्दी बदलते रहते हैं।

खाली हाथ चढ़ने वाले लोग तो इस तरह आसानी से चढ़ सकते हैं। पर कुलियों को भारी बोझ लेकर चढ़ना होता है। चढ़ाई बहुत बार बिल्कुल खड़ी चढ़ाई होती है। अतः उनके ऊपर से रस्सी की सीढ़ियाँ लटका दी जाती हैं। उन पर पाँव रखते हुए ये लोग आसानी से ऊपर चढ़ जाते हैं। इतनी ऊँचाई पर इतने सामान को लेकर केवल ये शेरपा कुली ही चढ़ सकते हैं। वस्तुतः इन कुलियों का सामर्थ्य उन आरोहियों की अपेक्षा कहीं अधिक होता है, जिनका नाम बड़ी धूम-धाम से अखबारों में छपा करता है।

मैलोरी और उसके साथी कुली बर्फ़ की सीढ़ियाँ काटते हुए ऊपर चढ़ रहे थे कि अचानक कच्ची बर्फ का एक अत्यन्त विशाल ढेर नीचे की ओर फिसलना शुरू हुआ। साक्षात् सफेद ठंडी मौत नीचे की ओर फिसलती हुई आ रही थी। इससे बचने का कोई उपाय नहीं! देखते-देखते वह बर्फ का ढेर १४ कुलियों को अपने साथ लेता हुआ नीचे की ओर लुढ़कता चला गया। भय और घबराहट के मारे बाकी लोगों का खून जम-सा गया। फटी हुई आँखों से वे उस स्थान को देखते रह गये, जहाँ कुछ देर पहले उनके १४ साथी चल रहे थे और अब वहाँ सपाट बर्फ़ के सिवाय और कुछ भी नहीं था।

आगे बढ़ने का प्रयास छोड़ दिया गया। बड़ी मेहनत करके दबे

हुए लोगों को बर्फ़ के ढेर में से निकालने की कोशिश की गई। उनको बर्फ़ में से निकालने के लिये बाकी लोगों ने भी अपनी जान को जोखम में डाल दिया। पर उसके बाद भी केवल ७ आदमी जीवित निकाले जा सके। बाकी सात मर गए।

इसके बाद भी दो बार दल के सदस्यों ने चोटी तक पहुँचने का यत्न किया। किन्तु वे केवल २७,००० फीट ऊँचाई तक पहुंच सके। चोमोलुंगमा अभी और भी २००० फीट ऊँचाई पर मुस्करा रही थी।

वर्षा के कारण फिर आरोहियों को लौट आना पड़ा।

१९२४ में फिर एक आरोही दल संगठित किया गया। इस दल का नेता ब्रिगेडियर गार्टन था। मैलोरी इस बार भी दल में था। वही एक ऐसा सदस्य था, जो इससे पहले के सब अभियानों में सम्मिलित हुआ था।

उन्होंने १७,००० फीट की ऊँचाई पर अपना आधार शिविर बनाया। उनकी योजना यह थी कि आगे बढ़ते-बढ़ते चोमोलुंगमा से पहले छः शिविर बनायेंगे। यह छठा शिविर चोटी के बिल्कुल समीप होगा और वहाँ से एक या दो आरोही चढ़ाई के अन्तिम भाग को पूरा कर सकेंगे। इन सभी शिवरों में दो या तीन आदमियों के ठहरने भर की जगह होगी, इससे अधिक नहीं। इन शिवरों को बनाना भी आसान काम नहीं था। चिकनी बर्फ़ पर सीधी खड़ी चढ़ाई चढ़कर इन शिविरों के लिये छोटे-छोटे तम्बू, खाने का सामान तथा सोने के लिये ऊनी थैले वहाँ पहुँचाने थे। उसके बाद मुख्य आरोहियों ने वहाँ पहुँच कर रात बितानी थी। अगर रात सकुशल बीत जाए, तो अगले दिन चढ़ाई का अन्तिम भाग चढ़ कर चोमोलुंगमा को विजय करना था।

रास्ते में बर्फ़ में गहरी खाइयां थीं। जिन्हें पार करना बहुत कठिन

था। कहीं तो इन खाइयों पर बर्फ़ के ही पुल भी स्वभावतः बने हुए मिल जाते थे और कहीं एक व्यक्ति को रस्सी के सहारे नीचे खाई में उतारा जाता था। वह व्यक्ति खाई के दूसरी ओर चढना शुरू करता था। जब वह चढ़ते-चढ़ते ऊपर पहुँच जाता था, तो रस्सियाँ आर-पार फेंक कर रस्सियों का पुल तैयार कर लिया जाता था। पर रस्सी के इस पुल को पार करना सरकस का खेल दिखाने से कम खतरनाक नहीं था। रस्सियों पर हाथ और पैर जमा कर उन गहरी खाइयों को पार करते एक बार तो शायद बन्दर को भी हिचक होती। पर ये बहादुर शेरपा भारी बोझ लाद कर भी इन पुलों को इस तरह पार कर लेते थे, जैसे कोई खास बात ही न हो।

एक बार आरोही लोग बर्फ़ के बने हुए एक प्राकृतिक पुल को पार कर रहे थे। अचानक बर्फ़ टूट गई। एक आरोही नीचे खाई में गिरा। अगर वह गिरता ही चला जाता, तो शायद कई सौ फुट नीचे गिरता और तुरन्त मर जाता। पर गिरते-गिरते उसने कोशिश की और अपनी कुल्हाड़ी खाई की दीवार में गड़ा दी। यह दीवार भी बर्फ़ की ही थी। कुल्हाड़ी बर्फ़ में मज़बूती से जा गड़ी। एक ज़ोर का झटका लगा और उस व्यक्ति का नीचे गिरना रुक गया। मौत के मुँह के समान उस खाई में वह झूलने लगा। देर तक इस तरह झूला भी नहीं जा सकता था। पर तभी उसके साथियों ने ऊपर से रस्सियाँ लटका दीं और उनका सहारा लेकर वह ऊपर चढ़ सका। सबने यही समझा कि वह मर कर फिर जीवित हुआ है।

तीसरा शिविर बना लेने के बाद वे आगे बढ़ने की योजना बना ही रहे थे कि एकाएक ज़ोर का तूफ़ान चलना शुरू हो गया। यह तूफ़ान ४८ घंटे तक चलता रहा। तम्बू में पड़े-पड़े लोग थकान, सर्दी, और नींद न आने के कारण परेशान हो गए। पर तम्बू से बाहर निकलने का अर्थ था मौत। तेज़ अंधड़ तम्बू को उखाड़ फेंकने की-सी कोशिश

कर रहा था, फिर तम्बू से बाहर खड़े आदमी को उड़ाते उसे क्या देर लगनी थी ? तीसरे दिन सवेरे तूफान थमा। तापमान गिर कर जमाव बिन्दु से ३९ डिग्री नीचे पहुँच गया था। एक शेरपा ने हिम्मत करके चाय बनाई। उसे पीकर आरोही लोगों ने नीचे की ओर उतरना शुरू किया। एक व्यक्ति की अंगुलियाँ बर्फ़ के कारण गल गईं। पर रोने-धोने का अवसर नहीं था। जान बच गई थी, यही क्या कम बात थी ?

मौसम सुधर गया। डा० समरवैल और ब्रिगेडियर नार्टन ने चोमोलुँगमा पर चढ़ने का प्रयत्न शुरू किया। योजना अत्यन्त विचार-पूर्वक बनाई गई थी। उन्होंने सब से ऊँचा कैम्प २८,००० फीट की ऊँचाई पर जाकर बनाया। इस शिविर में खाने का सामान, सोने के लिये गर्म थैले, स्टोव इत्यादि पहुँचा दिये गये थे। रात में उन्हें नींद नहीं आई, क्योंकि इतनी ऊँचाई पर हवा बहुत हल्की थी। अगले दिन सवेरे जब चढ़ाई आरम्भ करने का समय आया, तो समरवैल की तबियत बहुत खराब हो गई और उसे वापस लौटना पड़ा।

नार्टन ने चोटी पर चढ़ना शुरू किया। पर काम बहुत मुश्किल था। चढ़ाई बिल्कुल खड़ी थी, इसलिये प्रत्येक कदम बहुत सँभल कर रखना पड़ता था। बर्फ के कारण फिसलन भी खूब थी। हर अगला कदम रखने के लिए कुल्हाड़ी से बर्फ को काट कर सीढ़ी-सी बनानी पड़ती थी। जरा-सा परिश्रम करने में ही दम फूल जाता था। हवा खूब ठंडी थी और बहुत तेज़ थी। हाथ-पैर सुन्न हुए जा रहे थे। घंटे-भर तक निरन्तर प्रयत्न करने के बाद नार्टन कुल ११६ फीट चढ़ पाया। फिर उसे विश्राम के लिये बैठ जाना पड़ा। इन स्थानों में विश्राम करने के बाद थकान और भी अधिक मालूम होने लगती है। काफी देर बाद नार्टन ने फिर उठ कर ऊपर चढ़ने की कोशिश की, किन्तु वह केवल १० फीट और चढ़ पाया।

इतना चढ़ने में ही बहुत समय बीत गया था। असल में यह चलना क्या था, एक तरह से घिसटना था। जब सूर्य मध्याह्न की रेखा को पार कर गया तो नार्टन को वापस लौटने की चिन्ता हुई। क्योंकि यदि वह समय रहते वापस छठे शिविर तक न लौट सका, तो रात उसे खुले में बितानी पड़ेगी और उस दशा में वह किसी तरह जीवित नहीं रह सकेगा। उसने बुद्धिमत्ता से काम लिया और २८,१२६ फीट की ऊँचाई से वापस लौट पड़ा। उससे पहले इतनी ऊँचाई तक और कोई व्यक्ति नहीं जा पाया था, और उसके बाद भी बहुत समय तक जाकर वापस नहीं लौट सका।

पाँचवें शिविर में उसे समरवैल मिल गया। यद्यपि अँधेरा हो गया था, पर दोनों आरोही टार्च की रोशनी में रास्ता देखते हुए जैसे-जैसे चौथे शिविर तक वापस लौट आये। यहाँ अन्य साथी उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। यहाँ सोने की सुविधा भी अपेक्षाकृत अधिक थी।

इन लोगों को वापस लौटते हुए उतराई पर इतना कष्ट उठाना पड़ा और उसमें जान का इतना अधिक जोखम था कि भविष्य के लिए सब आरोहियों के लिये यह नियम बना दिया गया कि किसी भी दशा में ऊपर से उतरते हुए आरोही तब तक छठे कैम्प से नीचे न उतरें, जब तक कि उन्हें लेने के लिये ताज़ादम लोग चौथे कैम्प से वहाँ न पहुँच जाएँ। छठे कैम्प में सारी रात रह कर भी व्यक्ति आसानी से जीवित रह सकता है, परन्तु थकी हुई दशा में भयंकर ढलान पर उतरते हुए इस बात का खतरा बहुत अधिक है, कि उसका कोई पैर गलत पड़ जाए; और फिर उस गलती को कभी भी न सुधारा जा सके।

रात के समय नार्टन की आँखों में दर्द शुरू हो गया। अगले दिन उसे पता चला कि उसे आँखों से दीखना बन्द हो गया है। यह बर्फ की तेज़ चमक का दुष्परिणाम था। कुशल यह हुई कि उसे यह कष्ट रास्ते में उस समय नहीं हुआ, जब वह अकेला था। चौथे शिविर में बड़ी

मुश्किल से तीन व्यक्ति उसे सहारा देते हुए उतार कर आधार शिविर तक लाए। जहाँ व्यक्ति के लिए अपने-आप चढ़ या उतर पाना ही अत्यन्त कठिन है, वहाँ से वे तीनों नार्टन को, जिसे कुछ नहीं दीखता था, किस तरह ले गये होंगे, इसकी कल्पना आसानी से की जा सकती है। तीसरे दिन नार्टन को फिर दिखाई देना शुरू हुआ।

नार्टन के प्रयत्न के पश्चात् जार्ज लीघ मैलोरी और ऐंड्रम् इर्वाइन ने चढ़ने का प्रयत्न किया। फिर पहले की ही भाँति सारी सामग्री ऊपर के शिविरों में पहुंचाई गई। रात इन दोनों ने छठे शिविर में बिताई। इधर सवेरा होने पर ये दोनों शिखर पर अन्तिम चढ़ाई करने के लिए रवाना हुए और उधर एक तीसरा आरोही ऐन. ई. ओडैल चौथे शिविर से सामग्री लेकर छठे शिविर के लिए रवाना हुआ। उसका काम यह था कि वह सामग्री छठे शिविर में रख कर उसी दिन चौथे शिविर में वापस लौट आए। छठे शिविर में दो से अधिक व्यक्तियों के सोने के लिये स्थान नहीं था।

जब ओडैल छठे शिविर में पहुँचा, तो उस समय चोमोलुंगमा शिखर पर बादल छाए हुए थे। अगर बादल न होते तो चढ़ते हुए दोनों आरोही उसे बिल्कुल साफ दिखाई पड़ते, क्योंकि दूरी बहुत थोड़ी थी। ओडैल छठे शिविर में बैठ कर उनकी प्रतीक्षा करने लगा। जरा देर के लिये बादल के आवरण में एक दरार-सी फटी और ओडैल ने देखा कि दोनों आरोही बहुत ऊँचाई पर पहुँच गये हैं। वे अभी भी ऊपर चढ़ते जा रहे थे। जरा देर के बाद बादलों की वह दरार फिर बन्द हो गई और फिर सारा शिखर पहले की ही तरह बादलों में छिप गया।

काफी समय बीत गया। अब तक उन दोनों को चढ़ाई पूरी करके वापस लौट पड़ना चाहिये था। ओडैल ने सूर्य की ओर देखा। दिन ढल चला था। पर अगर दस-पाँच फीट ही बाकी बचे हों, तो शायद अपनी सफलता को पूरा करने के लिये वे लोग कुछ समय और लगा रहे हों।

उत्सुकता से अधीर होकर ओडैल चढ़ाई पर कुछ और आगे बढ़ा, जिससे लौटते समय वह रास्ते में ही उनका स्वागत कर सके और उनकी नीचे उतरने में सहायता कर सके। पर वे कहीं दिखाई नहीं पड़े।

अँधेरा होने लगा था। ओडैल को लौट कर चौथे शिविर तक वापस जाना था। इसलिये वह लौट पड़ा। पर एक बात उसके मन में बार-बार आ रही थी : "अब तक तो उन दोनों को वापस लौट पड़ना चाहिए था।" उसने रास्ते में से भी मुड़-मुड़ कर कई बार देखा, पर कोई दिखाई नहीं दिया।

अगले दिन सवेरे ओडैल फिर छठे शिविर के लिये रवाना हुआ। उसे आशा थी कि दोनों साथी उसे शिविर में खुशी मनाते हुए मिलेंगे। अवश्य ही वे दोनों सफल हुए होंगे, क्योंकि वे इतनी देर तक भी जो कल वापस नहीं लौटे थे। बड़े उत्साह के साथ ओडैल चढ़ता हुआ छठे शिविर में पहुँचा, किन्तु वहाँ पहुँच कर उसने देखा कि शिविर खाली है। वे दोनों लौटे नहीं थे। वे दोनों फिर कभी नहीं लौटे। पहले दिन बादलों की दरार में से ओडैल को उनकी जो झलक दिखाई पड़ी थी, बस, वही उनका अन्तिम दर्शन था।

ओडैल उन दोनों को ढूँढ़ने के लिये चढ़ाई पर कुछ दूर तक गया भी, किन्तु यह प्रयत्न निष्फल था। मैलोरी और इर्विन पर क्या बीती, यह कभी पता नहीं चल सकेगा। वे दोनों शिखर तक पहुँचे भी या नहीं, यह भी ठीक तरह नहीं कहा जा सकता। बहुत ही उदास होकर ओडैल वापस लौट पड़ा।

इस तरह तीसरे अभियान का करुण अन्त हुआ। उसके बाद १९३३ में सर ह्यू रटलैज की अध्यक्षता में एक आरोही दल नोमोलुंगमा पर चढ़ाई करने गया। यह दल उस ऊँचाई तक भी नहीं पहुँच पाया, जहाँ तक नार्टन चढ़ चुका था। पर इस दल के यात्रियों को एक जगह मैलोरी की बर्फ़ काटने की कुल्हाड़ी पड़ी हुई अवश्य मिली।

इसके बाद १९३५ से १९५३ तक चोमोलुँगमा पर चढ़ने के लिये सात अभियान और किये गए। इन यात्राओं के आरोहियों में ऐरिक शिप्टन, टिलमैन, तेनसिंह, आस्कर हौस्टन, एडमंड हिलैरी, और रेमंड लैम्बर्ट के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ऐरिक शिप्टन ने कई बार चढ़ाइयों में भाग लिया और यह बात मालूम की कि चोमोलुँगमा शिखर पर चढ़ने के लिये उत्तरी ढलान की ओर से चढ़ना उतना सरल नहीं है, जितना कि दक्षिणी ढलान की ओर से। इसी अनुभव के आधार पर अन्तिम दसवें और ग्यारहवें अभियान दक्षिणी ढलान की ओर से ही किये गए थे। दसवें अभियान में भी स्विस यात्री लैम्बर्ट और शेरपा तेनसिंह शिखर से ८०० फुट नीचे तक पहुँच गए थे।

अन्त में सन् १९५३ में कर्नल जॉन हंट के नेतृत्व में एक दल चोमोलुँगमा पर चढ़ाई करने के लिये निकला। इसी दल के दो सदस्यों, शेरपा तेनसिंह और एडमंड हिलैरी को यह सम्मान प्राप्त हुआ कि वे सबसे पहले संसार के सबसे ऊँचे शिखर पर पैर रख सकें। ये दोनों ही आरोही पहले भी चोमोलुँगमा पर हुए अनेक अभियानों में भाग ले चुके थे।

जितनी बार चोमोलुँगमा पर किए गए अभियानों में शेरपा तेनसिंह ने भाग लिया, उतनी बार शायद और किसी व्यक्ति ने नहीं लिया। तेनसिंह का सारा जीवन चोमोलुँगमा की छाया में ही बीता है। इसलिए इन ऊँचे हिमालय शिखरों पर चढ़ने का जितना अधिक अनुभव तेनसिंह को था, उतना कर्नल हंट के दल में किसी अन्य को न था। १९५२ से पहले जितने दलों में तेनसिंह साथ गया, उनमें उसे दल का बाकायदा सदस्य नहीं माना गया। उसका स्थान पथ-प्रदर्शक का होता था, जो शेरपा कुलियों की ही भाँति वेतनजीवी कार्य था। १९५२ में स्विस-यात्री दल के साथ जाने पर पहले-पहल तेनसिंह को दल के सदस्य का समान गौरव प्रदान किया गया। इस यात्री दल के नेता डाक्टर वैरस

ड्यूआंट थे। बाद में १९५३ में कर्नल हंट के दल में भी तेनसिंह ने इसी शर्त पर जाना स्वीकार किया कि उसे सदस्य माना जाए; और उसे दल का सदस्य माना गया।

तेनसिंह को बार-बार चोमोलुंगमा पर चढ़ाई करने के कारण अपने ऊपर बहुत विश्वास हो गया था। १९५२ के अभियान में शिखर से केवल ८०० फीट नीचे रह जाने से उसका आत्मविश्वास और भी पुष्ट हो गया था। वह भली-भाँति अनुभव करता था कि वह चोमोलुंगमा पर चढ़ सकता है, इसीलिए उसने दल के नेता कर्नल हंट से दल में सम्मिलित होते समय ही यह वचन ले लिया था कि "आप मुझे चोमोलुगमा पर चढ़ाई करने से किसी भी दशा में न रोकेंगे। चाहे मौसम कितना ही प्रतिकूल क्यों न हो; चाहे दल के और सदस्य कितने ही असफल क्यों न रहे हों; और चाहे सफलता की आशा कितनी ही कम क्यों न हो।" जो व्यक्ति इतना दृढ़ संकल्प कर सके, वह कम ही असफल लौटता है।

जहाँ तक प्रबन्ध और व्यवस्था का प्रश्न था, कर्नल हंट अत्यन्त

योग्य सिद्ध हुए। पिछले अनुभवों से लाभ उठा कर उन्होंने सारी यात्रा में आवश्यक सामग्री साथ ले जाने का प्रबन्ध किया। ३६८ से अधिक कुली इस सामान को काठमाँडू से ढोकर नामचे बाज़ार तक लाए। खाद्य सामग्री के अतिरिक्त गर्म कपड़े, तम्बू, और ओषजन के यंत्र भी साथ थे। ऊँचाई पर चढ़ने में ओषजन के यंत्र से बहुत सहायता मिलती है। पर कठिनाई यह होती है कि ओषजन यंत्र भारी होता है। उस ऊँचाई पर भार उठा पाना व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं होता। इसलिए कर्नल हंट ने बहुत हलके ओषजन यंत्र तैयार करवाये थे। कुल मिला कर लगभग ३०० मन सामान इस आरोही दल के पास था।

नामचे बाज़ार से चोमोलुंगमा की तलहटी कुल पन्द्रह बीस मील दूर है। नामचे बाज़ार १२,५०० फीट की ऊँचाई पर है। यहाँ से आगे बहुत खड़ी चढ़ाई चढ़ कर आगे जाना होता है। मार्च में ये लोग काठमाँडू से रवाना हुए थे। मई के मध्य तक इन्होंने अपना आधार शिवर और उससे आगे के चार शिविर तैयार कर लिए थे। इस बार कर्नल हंट की दूरदर्शिता के फलस्वरूप किसी भी सामग्री की कमी नहीं पड़ने पाई। फिर भी पर्वतारोहण की सब कठिनाइयाँ ज्यों की त्यों थीं। जी मिचलाना, साँस फूलना, थकान, नींद न आना, सर्दी, तेज हवा, बर्फ में बनी हुई भयावह दरारें और खाइयाँ, सब कुछ पहले जैसा था। अन्तर केवल इतना था कि दक्षिणी ढलान वाला मार्ग पहले से मालूम था और तेज़ी से उस ओर बढ़ने की कोशिश की जा सकती थी। परन्तु शरीर को उस जलवायु के अनुकूल बनाने के लिए कुछ समय ऊँचाई पर बने शिविरों में रहने की आवश्यकता थी। इसलिए कुछ दिन और यों ही बीत गए। २४ मई तक आखिरी, आठवाँ शिविर भी तैयार कर लिया गया।

कर्नल हंट ने दो-दो आरोहियों के दो-दो दल अन्तिम चढ़ाई करने के लिये बनाए थे। पहले दल में टाम बोर्डिलोन और डाक्टर एवांस थे और

दूसरे दल में शेरपा तेनसिंह और एडमंड हिलेरी। पहले दल ने अपनी चढ़ाई २५ मई को की। सवेरे ही दोनों उठ कर उत्साह के साथ तेज़ी से आगे बढ़ने लगे। दल के बाकी सदस्य बड़ी उत्सुकता के साथ दूरबीन से उनकी गतिविधि का निरीक्षण कर रहे थे। चोटी पर हलके बादल घिरे हुए थे। इस लिए ये आरोही कभी तो दिखाई पड़ने लगते थे और कभी बादलों की ओट में छिप जाते थे। धीरे-धीरे वे दीखने बन्द हो गये।

अगले दिन वे दोनों लौटे। रात उन्होंने ऊपर के शिविर में बिताई थी। उनके चेहरों पर वह मुस्कान नहीं थी, जो दूर से ही उनकी विजय की सूचना दे देती। वे बहुत ही थके हुए थे। बोंडिलोन का भार इन २४ घंटों में ३ सेर के लगभग कम हो गया था। उन्होंने बताया कि वे २८,२७० फीट की ऊँचाई तक पहुँच पाए थे। उससे आगे वे किसी भी तरह नहीं चढ़ सके।

परन्तु कर्नल हंट ने बड़े उत्साह के साथ उनका स्वागत किया। उनसे पहले इतनी ऊँचाई तक भी तो कोई नहीं पहुँच पाया था। असफल होने के बावजूद ये विजयी थे। और किसे मालूम कि इससे ऊपर चढ़ पाना अगली टुकड़ी के लिए भी संभव हो या न हो।

२७ मई को दूसरी टुकड़ी ने, जिसमें तेनसिंह और हिलेरी थे, अन्तिम चढ़ाई के लिए प्रस्थान किया। अगर यह टुकड़ी भी असफल रही, तो बिना चोमोलुँगमा को विजय किये ही वापस लौटना पड़ेगा। मानसून के चिह्न दिखाई पड़ने लगे थे। तीसरा प्रयत्न करने का मौका नहीं मिलेगा।

२७ मई को दक्षिणी ढलान पर से सामान ले कर कई कुलियों के साथ ये दोनों रवाना हुए। कुछ दूर चले थे कि तेज़ हवा चलनी शुरू हो गई। विवश होकर तम्बू गाड़ कर उसके अन्दर बैठ रहना पड़ा। आशा थी की हवा का वेग कुछ समय में घट जाएगा, किन्तु वह सारे दिन और

सारी रात उसी तरह चलती रही। ऐसा लगता था कि जैसे वह तम्बू को उखाड़ फेंकने पर ही तुली हुई है। हवा के साथ ही ठंड भी बढ़ती गई।

२८ मई को सवेरे हवा शान्त हो गई थी। १० बजे के लगभग ये लोग सामान लेकर आगे बढ़े। एक कुली बीमार हो गया था। इसलिए उसके हिस्से का बोझ भी बाकी लोगों को आपस में बाँट लेना पड़ा। दो बजे के लगभग ये लोग २७,९०० फीट की ऊँचाई पर जा पहुंचे। यहीं इन्होंने शिविर डाल दिया। तेनसिंह और हिलेरी वहीं रह गए। बाकी कुली लोग तुरन्त निचले शिविर के लिए लौट पड़े। अंधेरा होने से पहले उन्हें भी नीचे के शिविर तक पहुँच जाना था।

तम्बू गाड़ कर तेनसिंह ने स्टोव जलाकर गरमागरम सूप तैयार किया। खा-पीकर दोनों मजे से सो गए। यह इनका सौभाग्य ही था कि इनको उतनी ऊँचाई पर नींद आ गई; नहीं तो इससे भी कम ऊँचाई पर आरोहियों की नींद समाप्त हो जाती है। पर ये दोनों ही इस शिखर के लिए की गई अनेक यात्राओं में आने से इस ऊँचाई के अभ्यस्त हो गए थे।

नींद से उनके शरीर फिर तरोताजा हो गए। २९ मई को सवेरे चार बजे ही दोनों की नींद खुल गई। मौसम बिलकुल साफ था। यहाँ तक कि १६००० फीट नीचे दूर किसी करबे की रोशनियाँ भी दिखाई पड़ रही थीं।

आज की चढ़ाई में ओपजग यंत्र ही उनके सब से बड़े सम्बल थे। पर जब हिलेरी ने अपने ओपजन यंत्रों को देखा तो उसे यह देखकर बहुत दुःख हुआ कि उनमें बहुत थोड़ी ओपजन बाकी थी। इससे तो वे आधा रास्ता भी पार न कर सकेंगे। पर, जो भी हो, चढ़ाई तो उन्हें करनी ही थी।

साढ़े छः बजे वे दोनों चोमोलुंगमा की अन्तिम चढ़ाई के लिए रवाना हो गए। ऐसा दिन जीवन में फिर शायद दूसरी बार न आएगा। अगर

विजयी हुए तब भी, और विजयी न हुए तब भी। कुछ दूर चले थे कि बर्फ में दबी हुई कोई काली-सी चीज़ दिखाई पड़ी। टटोलने पर देखा कि ये दो ओषजन यंत्र थे। एवांस और बोर्डिलोन तीन दिन पहले थकान से चूर होकर इन्हें यहीं फेंक गए थे। भगवान् की सहायता का हाथ इतनी दूर तक पहुँच सकता है, यह इन्होंने पहले कभी न सोचा था। यदि इनको ये दो ओषजन यन्त्र यहाँ न मिलते तो इनकी चढ़ाई का फल क्या होता, कुछ कहा नहीं जा सकता। पर अब तो इन्हें बहुत बड़ा सहारा मिल गया था।

मौसम अच्छा ही रहा। जैसा अनुकूलतम मौसम इस चढ़ाई के लिए चाहिए, वैसा ही उस दिन था। चलते-चलते सामने बर्फ़ की एक गहरी दरार आ गई और कोई रास्ता नहीं था। चोटी का ऊपरी भाग बहुत दूर नहीं है, यह उन दोनों को मालूम था। पर यह दरार? आखिर दोनों उस दरार में ही घुस पड़े। कितनी ही देर तक वे दोनों उस दरार में चलते रहे। उस दरार का अन्त होने में ही नहीं आता था। ढाई घंटे तक वे निरन्तर कुल्हाड़ी से बर्फ़ काटते रहे और थके पैरों से आगे बढ़ते रहे। पर उन्हें लग रहा था कि आज वे सफलता के बहुत निकट हैं। शायद इसीलिए वे थक कर भी नहीं थक रहे थे।

आखिर दरार का अन्त आया। सिर के ऊपर आकाश एकाएक खुल-सा चला। देखा तो सामने ही चोमोलुंगमा का सर्वोच्च शिखर खड़ा था। जैसे हँस कर वह स्वागत कर रहा था। मानो कह रहा था: "अच्छा, आखिर तुम आ ही गए!" कुछ ही कदमों में तेनसिंह शिखर पर जा चढ़ा। उसने भारत, नैपाल और इंग्लैंड के झण्डे अपनी कुल्हाड़ी पर बाँध कर हवा में फहरा दिए। हिलेरी ने कुछ ही कदम नीचे खड़े होकर उसका फोटो ले लिया। उसके बाद हिलेरी भी शिखर के ऊपर जा चढ़ा। चोमोलुंगमा का शिखर अब अजेय नहीं रहा था।

कुछ देर खड़े रहकर उन्होंने चारों ओर का दृश्य देखने का आनन्द

तेनसिंह

लिया। तेनसिंह ने शिखर के ऊपर कुछ सूखे मेवों की भेंट चढ़ाई। उस समय के उनके आनन्द का वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है। कुछ देर तक वे वहीं रहे।

उसके बाद उन्हें खयाल आया कि अभी उनका काम समाप्त नहीं हुआ है। शिखर के ऊपर तक चढ़ तो शायद मैलोरी और इर्वाइन भी गए होंगे। उन्हें जीते जी वापस भी लौटना है। जब तक मौसम अनुकूल है और ओषजन यंत्रों में ओषजन है, उससे पहले ही उन्हें अपने शिविर तक लौट जाना है। नहीं तो...उनकी यह विजय विजय ही न रहेगी।

दोनों वापस लौट पड़े। दोनों सकुशल वापस शिविर में पहुँच गए। अपने मुँह से अपनी विजय का समाचार सुनाने की आवश्यकता नहीं हुई। उनकी चाल ने और उनकी मुस्कान ने पहले ही सब कुछ बता दिया।

२४००० फीट की ऊँचाई तक उतर आने के बाद इस विजय की सूचना सफेद बर्फ़ पर काले थैलों द्वारा अंग्रेजी का ऐल (L) अक्षर बना कर आधार शिविर को दी जानी थी। इस ढंग से सूचना पाकर आधार शिविर के लोग उसे रेडियो द्वारा सारे संसार में भेज देते। इसी ढंग से सूचना दी भी गई। पर उस दिन बादल घिर आए। अगले दिन तक वह सूचना आधार-शिविर में न पहुँच सकी। एक जून को यह संवाद सारे संसार को मालूम हो गया कि चोगोलुंगमा के अजेय शिखर को दो वीरों ने विजय कर लिया है।

२ जून को इंग्लैंड की रानी ऐलिजाबैथ द्वितीय का राज्याभिषेक था। उस अवसर पर इंग्लैंड की ओर से संगठित इस दल की विजय ने राज्याभिषेक समारोह में और चार चाँद लगा दिए।

वीरत्व की पराकाष्ठा ४

संसार में ऐसा भी होता है। इसी संसार में, जहाँ हज़ारों, लाखों, करोड़ों व्यक्ति मृत्यु की कल्पना से ही भयभीत हो उठते हैं; जहाँ लोग प्राण बचाने के लिए बड़ी से बड़ी नीचता, बड़े से बड़ा दुष्कर्म करने को उद्यत हो जाते हैं, वहीं ऐसे लोग भी जन्म लेते हैं, जो अवसर पड़ने पर अपने प्राणों का मोल एक कोड़ी भी नहीं लगाते। वे ही प्राण, जिन्हें बचाने के लिए माँ भूखी होने पर अपने बच्चे को दो सेर चावल के बदले बेच देती है। वही जीवन, जो इतने अद्भुत आनन्दों से भरा हुआ है, कुछ लोगों के लिए इतना नगण्य और तुच्छ हो सकता है, यही सोच-सोचकर आज मेरे आश्चर्य का पार नहीं है।

बात कुछ पुरानी हो गई है, पर बहुत पुरानी नहीं है। द्वितीय विश्व-युद्ध उन दिनों चल रहा था। सन् १९४४ के अन्तिम भाग में जर्मनी और जापान का पक्ष कुछ कमज़ोर हो चला था। सम्मिलित राष्ट्रों (इंग्लैंड, अमेरिका आदि) का पलड़ा निरन्तर भारी होता जा रहा था। धुरी राष्ट्रों की सेनाओं को प्रायः सभी मोर्चों पर हार कर पीछे हटना पड़ रहा था।

उस समय फिलिपाइन द्वीप-समूह पर जापानियों का अधिकार था। परन्तु फिलिपाइन के समुद्री युद्ध में जापानी बेड़े की घातक पराजय हो चुकी थी और अमेरिकन जलपोतों ने अपनी सेनाएँ लेइटे की खाड़ी में उतार दी थीं। अमेरिकन विमानवाहक जहाज़ों से उड़-उड़कर सैकड़ों

अमेरिकन विमान जापानी ठिकानों पर बमवर्षा करने लगे थे। जापानी जहाज़ी बेड़ा अब कुछ भी कर पाने में असमर्थ था। जापानी साम्राज्य का पतन बस कुछ ही देर की बात मालूम होने लगी थी।

१९ अक्टूबर १९४४ का दिन था। फिलिपाइन द्वीप में स्थित लुजोन के हवाई अड्डे पर एडमिरल ताकिजिरो ओहिनिशी ने जापानी वायुसेना की २०१वीं टुकड़ी के कार्यालय में वायुसेना के अफसरों को बुलाया। कोई लम्बी-चौड़ी भूमिका नहीं; बिलकुल सीधे-सादे शब्दों में एडमिरल ने कहा : "इस समय सामरिक स्थिति बहुत गंम्भीर है। जापानी साम्राज्य का भविष्य 'विजय अभियान' के परिणाम पर निर्भर है। एडमिरल कुरीता की अध्यक्षता में जलसेना की एक टुकड़ी लेइटे की खाड़ी में जाएगी और वहाँ खड़े शत्रु के जहाज़ों को नष्ट कर देगी। हवाई बेड़े को यह काम सौंपा गया है कि वह कम से कम एक सप्ताह के लिए शत्रु के विमानवाहक जहाज़ों को बेकार कर दे। परन्तु इस समय स्थिति ऐसी है कि यदि हम पुरानी परम्परागत विधि से ही युद्ध करें, तो विजय प्राप्त करना हमारे लिए असम्भव होगा। मेरी सम्मति यह है कि यदि बमों से लदे हुए विमानों को नीचे की ओर झपटकर शत्रु के विमानवाहक जहाज़ों पर लेजाकर टकरा दिया जाए, तो शत्रु की प्रगति रोकी जा सकती है। इसके सिवाय और कोई उपाय नहीं है।"

पर यह कैसा उपाय ? शत्रु के जहाज को डुबाने के लिए अपने विमान लेजाकर उससे टकरा देना, जिससे बम अचूक जहाज ही पर गिरें और उसे समुद्र की तली में बिठा दें ? पर विमान और विमानचालकों का तो नाग-निशान समाप्त हो जायगा। अपने होश रहते कौन विमान-चालक ऐसा आत्मघाती आक्रमण करने को तैयार होगा ?

परन्तु एडमिरल के इन शब्दों ने सारे कमरे को विद्युताविष्ट-सा कर दिया था। सैनिकों के रोंगटे खड़े हो गए। जब एडमिरल बोल चुके तो २०१ वीं वायु-सेना के कमाँडर तमाई ने एडमिरल से कहा : "यह

विषय अत्यन्त गम्भीर है। हमें परस्पर विचार-विमर्श करने के लिए थोड़ा सा अवसर दिया जाय।"

विचार-विमर्श हुआ। सभी वायु-सैनिक युवा थे। सांसारिक सुखों का रस उन्होंने केवल चखा भर था। उसके लिये उनकी लालसा भी कम नहीं थी। और यहाँ यह एकाएक सुनिश्चित मृत्यु का, आत्मघात का, आह्वान आ पहुँचा। मरना है, या नहीं मरना, इस विचार-विमर्श में जितनी भी देर लग जाय, कम ही है। पर कहाँ? यह विचार-विमर्श तो मिनटों में समाप्त हो गया। बहुत ही कम लोगों ने अपनी जीभ को हिलाने का कष्ट किया। उनकी अद्भुत तेज से दमकती हुई आँखों ने उनके मन की बात कह दी। केवल दो को छोड़कर शेष सब सैनिक इस आत्मघाती उड़ान पर जाने को स्वेच्छापूर्वक तैयार थे। देश की विजय के निमित्त प्राण देने के लिये वे जैसे अधीर थे।

निश्चय हुआ कि लैफ्टिनैंट सेकी इस आक्रमण का नेतृत्व करेंगे। जब कमाँडर तमाई ने लैफ्टिनैंट सेकी को बताया कि उसे आक्रमण का नेतृत्व करने के लिए चुना गया है, तो क्षण भर के लिए सेकी विचलित हो उठा। जब वह जापान से इस मोर्चे के लिए रवाना हुआ था, उससे कुछ ही दिन पहले उसका विवाह हुआ था। बहुत सम्भव है कि उसकी आँखों में अपनी नव-वधू की स्मृति फिर आई हो। वह क्षण भर आँखें मूँदे अपने हाथों पर सिर रखकर बैठा रहा। पर केवल गिनती के दो एक क्षण। उसके बाद उसने आँखें खोलीं। उसके ओठ मुस्कराहट से खिल उठे थे। "अवश्य, मैं अवश्य इस आक्रमण का नेतृत्व करूँगा।" उसकी आवाज़ में दृढ़-सँकल्प था।

२० अक्टूबर को एडमिरल ओहिनिशी ने इन 'कामिकाजे' (दिव्य पवन) विमानचालकों को बुलाया। उसने अपनी आवेश से काँपती हुई आवाज में कहा: "देश के सामने भयंकर संकट उपस्थित है। इस समय देश की रक्षा मंत्रियों, सेनापतियों तथा मुझ जैसे तुच्छ

सेनाध्यक्षों के बस के बाहर की वस्तु हो गई है। इस समय केवल तुम लोग ही देश को बचा सकते हो।" भावावेश की तीव्रता के कारण उसकी आँखों से आँसू बहने लगे : "मेरा अनुरोध है कि तुम लोग अपनी ओर से भरसक प्रयत्न करना। भगवान् तुम्हें सफलता प्रदान करें।"

अन्य वायु-केन्द्रों में भी इसी प्रकार कामिकाजे विमान-चालकों की भरती हो रही थी। सेबू नामक केन्द्र में सेनाध्यक्ष ने अपने विमान-चालकों को अपनी सेवाएँ प्रस्तुत करने के लिए तीन घंटे का समय दिया। उसने कहा : "जो विमान-चालक इस कार्य के लिए तैयार हों, वे एक कागज पर अपना नाम, टुकड़ी का नम्बर, और अपना पद लिखकर एक लिफाफे में बन्द करके कार्यालय के बाहर रखे हुए सन्दूक में डाल दें। जो इस कार्य के लिए उद्यत न हों, वे लिफाफे में केवल खाली कागज बन्द करके डाल दें।" तीन घण्टे के बाद उस सन्दूक में से २२ लिफाफे निकाले गए। इनमें से केवल दो में खाली कागज थे।

२५ अक्टूबर को कामिकाजे का पहला आक्रमण डैवाओ में हुआ। इस आक्रमण के

फलस्वरूप शत्रु के तीन विमान-वाहक जहाजों को भारी क्षति पहुँची। उसी दिन लैफ्टिनैंट सेकी ने भी एक आक्रमण का नेतृत्व किया। यह आक्रमण मबालाकाट के पास किया गया था। ज्योंही शत्रु के चार विमान-वाहक जहाज दिखाई पड़े, त्योंही लैफ्टिनैंट सेकी ने अपना विमान तेजी से एक विमान-वाहक की ओर मोड़ा और झपट्टा मारते हुए उससे टकरा दिया। अगले ही क्षण विमान में लदे हुए बम फट गये। विमान-वाहक जहाज के बीच में से दो टुकड़े हो गए। उसके तुरन्त बाद एक और विमान आकर उसी जहाज से टकराया। बाकी भी आ-आकर अन्य जहाजों से टकराए। अनेक जहाज डूब गए और कई बुरी तरह टूट-फूट गए।

यह सफलता महत्वपूर्ण थी। इससे पहले दिन १५० विमानों ने पुरानी विधि से अमेरिकन जहाजों पर आक्रमण किए थे। पर उनसे जहाजों को कोई हानि नहीं पहुँची थी। उनकी तुलना में इन आत्म-घाती कामिकाजे आक्रमणों का फल कहीं अधिक लाभकारी रहा था। इस सफलता का समाचार शीघ्र ही सब मोर्चों पर पहुँच गया।

एडमिरल ओहिनिशी को भरोसा हो गया कि केवल इसी पद्धति से शत्रु का मुकाबला किया जा सकता है। इसलिये इस प्रकार के आक्रमणों को बढ़ाने का प्रयत्न किया गया। जापान से ढेर-के-ढेर युवक इस प्रकार के आक्रमणों के लिए तैयार हो-होकर आने लगे। स्थिति यह थी कि उन्हें अपनी बारी आने की प्रतीक्षा करनी पड़ती थी।

ज्यों-ज्यों युद्ध अग्रसर होने लगा, और स्थल पर जापानियों की पराजय होने लगी, त्यों-त्यों इन कामिकाजे आक्रमणों का वेग भी बढ़ने लगा। अमेरिकन जहाजों पर बमों समेत विमानों को लेजाकर गिरा देने के लिए उड़ाकों की कमी नहीं थी, परन्तु कमी विमानों की पड़ गई। जापानियों के पास पर्याप्त विमान नहीं थे। अन्त में तो स्थिति यहाँ तक आ गई कि शिक्षण के लिए प्रयुक्त किए जाने वाले विमान

भी इस काम के लिए ले लिए गए। परन्तु शत्रु की प्रगति को न रोका जा सका।

तब एक नए शस्त्र का आविष्कार किया गया। एक विशेष प्रकार के राकेट बनाए गए, जो बम-वर्षक विमानों द्वारा छोड़े जाते थे। इस प्रकार राकेट में एक चालक बैठा होता था, जो राकेट की दिशा को नियन्त्रित करता रहता था और उसे ठीक लक्ष्य तक ले जाता था। राकेट फटने के साथ ही चालक के भी टुकड़े-टुकड़े हो जाते थे। इस राकेट का नाम 'जिनराई बुताई' (दिव्य वज्र) रखा गया। इन राकेटों से भी शत्रु की जल-सेना को भारी क्षति उठानी पड़ी।

जब जापान ने आत्म-समर्पण किया, उस समय जापानी जल-सेना तथा वायु-सेना के २५२० सैनिक तथा अफसर इन कामिकाजे आक्रमणों में आत्म-बलिदान कर चुके थे।

१५ अगस्त १९४५ को जापान के सम्राट् की ओर से घोषणा की गई कि सब जापानी सेनाएँ युद्ध की समस्त कार्यवाही अविलम्ब बन्द कर दें। इस घोषणा के कुछ ही घण्टे बाद पाँचवें वायु-बेड़े के कमाण्डर एडमिरल उगाकी ने, जिसने इतने विमान-चालकों को आत्मघाती उड़ानों पर भेजा था, निश्चय किया कि अब वह स्वयं भी आत्मघाती उड़ान पर जायेंगे।

"जो कोई मेरे साथ चलना चाहें, वे चल सकते हैं" उन्होंने कहा।

चलने को तो बहुत लोग तैयार थे, पर उनके लिये विमान ही नहीं थे। अन्त में कुल मिलाकर ११ विमान जुटाए जा सके। एडमिरल उगाकी और उनके साथी विमानों पर बम लादकर उड़े। शत्रु के जहाज़ों को देखते ही वे बाज की तरह उन पर टूट पड़े। सब विमान अपने निशानों पर ठीक जाकर टकराए।

इस तरह एडमिरल उगाकी ने भी वीरगति प्राप्त की।

उसी दिन सायंकाल एडमिरल ओहिनिशी ने भी अपने पेट में सामुराई की तलवार भोंककर आत्महत्या कर ली। जापान में इस प्रकार के आत्मघात को 'हाराकिरी' कहते हैं। इसे वहाँ सम्मान की वस्तु माना जाता है। अपमानित जीवन की अपेक्षा यह है भी सचमुच लाखगुना अच्छा।

पर इस बात को समझते कितने लोग हैं ?

उत्तरी ध्रुव की खोज में ५

सन् १८८१ में अमेरिकन सरकार की ओर से एक यात्री दल ध्रुव-प्रदेश में ऋतु इत्यादि के अनुसंधान के लिए भेजा गया था। इस दल का नेता एडोल्फस वाशिंगटन ग्रीली था। दल में २३ सदस्य थे, जो सभी तरुण सैनिक थे।

सर्दियाँ प्रारम्भ होने से पहले ही ग्रीली का यह दल एक जहाज में चढ़कर एलेसमियर द्वीप की 'लेडी फ्रैंकलिन खाड़ी' में जा पहुँचा था। यह स्थान उत्तरी ध्रुव से ६०० मील दूर है। उस समय तक और कोई ध्रुव प्रदेश के इससे अधिक निकट तक नहीं पहुँच सका था।

जहाज ग्रीली दल को लेडी फ्रैंकलिन खाड़ी में द्वीप के तट पर उतार कर लौट आया। योजना यह थी कि १८८२ की गर्मियों में एक और जहाज आकर इस दल के पास वर्ष भर के लिए खाने-पहनने तथा अन्य आवश्यकता की सामग्रियाँ पहुँचा जायगा। १८८३ की गर्मियों में एक और जहाज आएगा और वह इस दल को वापस ले जाएगा। इस प्रकार ग्रीली दल ने दो वर्ष तक ध्रुव प्रदेश में रहकर अनुसंधान का कार्य करना था।

शुरू के महीने बहुत अच्छे बीते। दल के सभी सदस्य उत्साही, मौजी और परिश्रमी थे। साल भर के लिए आवश्यक सामग्री पास थी ही। वे खूब निश्चिन्त होकर अपनी स्लैज गाड़ियों पर चढ़कर दूर-दूर तक बर्फ़ीले प्रदेश में जाते। यद्यपि ठंड बहुत अधिक होती थी; तापमान शून्य बिन्दु

से ४३ डिग्री नीचे रहता था; बर्फ़ीले तूफान आते रहते थे; परन्तु ये तरुण अभियात्री इस सब की परवाह किए बिना अपने अनुसन्धान कार्य में जुटे रहते थे। उन्होंने उस प्रदेश में वायु की दिशा और वेग, तापमान, वायु के दबाव, चुम्बकीय शक्ति और गुरुत्वाकर्षण शक्ति के विषय में बहुत महत्वपूर्ण आलेख तैयार किए। इनके आधार पर बाद में ध्रुव प्रदेश की ऋतु के विषय में विश्वसनीय जानकारी प्राप्त हो सकी।

१८८२ में जिस जहाज़ ने रसद तथा अन्य आवश्यक सामग्री लेकर आना था, वह नहीं आया। यद्यपि यह बहुत चिन्ताजनक बात थी, क्योंकि इस दल का सारा भविष्य इस आने वाली रसद पर ही निर्भर था, परन्तु दल के सदस्य बहुत चिन्तित नहीं हुए। उनके पास अभी काम चलाने लायक रसद थी। वे अपने काम में लगे रहे। उन्होंने स्लैजों पर ३,००० मील से अधिक की यात्राएँ कीं। ग्रीनलैंड के जलडमरूमध्य में कड़ी बर्फ़ जम गई थी। एक टुकड़ी इस बर्फ़ को पार करके उत्तरी ध्रुव प्रदेश में दूर तक चली गई। एक और टुकड़ी ने ध्रुव प्रदेश में हेजन घाटी का पता चलाया। यहाँ हरी घास और फूल प्रभूत मात्रा में थे। अनगिनत रंग-बिरंगी तितलियाँ सब ओर उड़ी फिरती थीं। जहाँ तहाँ कस्तूरीमृग चरते दिखाई पड़ते थे और पानी में लम्बी पूँछ वाली बत्तखें तैर रही थीं। इस घाटी को देखकर इस दल के यात्रियों ने यह निष्कर्ष निकाला कि उत्तरी ध्रुव के प्रदेश में भी मनुष्य मजे से रह सकता है, बशर्तेकि उसे यह पता चल जाए कि यहाँ रहना कैसे चाहिए।

इसी प्रकार एक और वर्ष बीत गया। फिर भी कोई जहाज़ लेडी फ्रैंकलिन खाड़ी में नहीं आया। इस बार तो रसद पहुँचाने के लिए नहीं, बल्कि इन लोगों को वापस लेने के लिए जहाज़ ने आना था। परन्तु ध्रुव प्रदेश के समुद्र में जहाजों को सदा आने की सुविधा नहीं होती। बहुत बार समुद्र जमा हुआ होता है और कभी जब वह जमा नहीं होता, उसमें इतने हिमशैल तैर रहे होते हैं कि उनके बीच में जहाज़ ले जाना

सम्भव नहीं होता। इस बात की कल्पना पहले ही कर ली गई थी कि यदि किसी कारण जहाज़ लेडी फ्रैंकलिन खाड़ी तक नहीं पहुँच सके, तो क्या करना होगा। ग्रीली को आदेश था कि यदि ठीक समय पर जहाज़ न पहुँचे, तो वह व्यर्थ प्रतीक्षा में समय नष्ट न करे, बल्कि दक्षिण की ओर लौटना शुरू कर दे। लेडी फ्रैंकलिन खाड़ी से २६० मील दक्षिण की ओर सैबाइन अन्तरीप के पास एक जहाज़ उन्हें लाने के लिए खड़ा रहेगा। और यदि किसी कारण जहाज़ के लिए सैबाइन अन्तरीप के पास रह सकना असम्भव हो गया, तो उस स्थान पर साल भर के लिए रसद तथा अन्य सामग्री छोड़ जाएगा।

इसी योजना के अनुसार ९ अगस्त १८८३ को २३ अमेरिकनों और २ एस्किमों के इस दल ने अपना सामान समेटा और सब लोग एक २७ फीट लम्बी भाप से चलने वाली किश्ती में सवार होकर दक्षिण की ओर रवाना हो गए। इस किश्ती के पीछे तीन छोटी नौकाएँ और बँधी हुई थीं। अमेरिकन महाद्वीप के उत्तरी किनारे के द्वीपों और ग्रीनलैंड के मध्य एक संकरे समुद्र में से होकर इन लोगों को गुजरना था।

जब ये लोग १८८१ में आए थे, उस समय इस समुद्र में बर्फ़ बिलकुल नहीं थी और समुद्र में जहाज अच्छी तरह चल सकता था। १८८२ में यह समुद्र खूब कड़ी बर्फ़ के रूप में जमा हुआ था। उस समय इसके ऊपर स्लेज गाड़ी मजे में चलाई जा सकती थी। पर इस समय इसकी दशा उन दोनों से ही भिन्न थी। न यह पूरी तरह जमा हुआ था और न पूरी तरह पिघला ही हुआ था। सब ओर बड़े-बड़े हिमशैल पानी पर तैर रहे थे, जो वायु के वेग और समुद्र की धाराओं के बहाव में पड़कर तेज़ी से इधर-उधर को आ-जा रहे थे।

तीस दिन तक इनकी नौका हिम-शैलों से भरे उस समुद्र में धीरे-धीरे आगे बढ़ने का प्रयत्न करती रही। कई बार उसकी टक्कर हिम-शैलों से हुई और कई बार वह दो विशाल हिम-शैलों के बीच में आकर पिसते-

पिसते बची। एक बार उसके सामने एक विशाल हिम-शैल आ खड़ा हुआ, जो पानी की सतह से ऊपर ५० फीट ऊँचा दिखाई पड़ रहा था। उसका इससे सात गुना भाग पानी के अन्दर रहा होगा। आगे बढ़ने का कोई उपाय नहीं था। तभी एकाएक न जाने कैसे वह हिमखंड बीच में से टूट गया। दोनों टुकड़े अलग-अलग दिशाओं में हट गये और नौका को बीच में से निकलने के लिये रास्ता मिल गया।

९ सितम्बर को उन्हें दूर से सेबाइन अन्तरीप दिखाई पड़ने लगा। उन्होंने सोचा कि अब वे सरलता से वहाँ तक पहुँच सकेंगे, किन्तु तभी आगे कठोर जमी हुई बर्फ़ आ गई। उसे तोड़कर नौका आगे नहीं बढ़ सकती थी। आगे बढ़ने का एक ही उपाय था कि नौका को छोड़कर बर्फ़ पर चलकर वहाँ तक पहुंचा जाय। स्लेज गाड़ियाँ उनके पास थीं नहीं, और सामान का बोझ लगभग ७० मन था। पर उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। नौका की गद्दियां उखाड़ कर उन्होंने काम चलाऊ स्लेज-गाड़ियाँ बना लीं। उन पर रसद, वैज्ञानिक यन्त्र तथा अन्य आवश्यक सामान लादा और धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगे। बर्फ़ खतरनाक थी, क्योंकि वह जहाँ-तहाँ से पिघल चली थी। खाने की सामग्री कम रह गई थी, इसलिए लोगों को भर-पेट भोजन नहीं मिलता था। सामान को बर्फ़ पर घसीटना मेहनत का काम था। दिन भर में वे एक मील से अधिक नहीं चल पाते थे। पर चलते रहेंगे तो कभी न कभी लक्ष्य पर पहुँचेंगे ही।

१४ सितम्बर को एक विचित्र बात अनुभव हुई। जिस बर्फ़ पर वे चल रहे थे, वह कुछ काँपती-सी प्रतीत हुई। वह सारा हिम भाग, जिस पर ये चल रहे थे, उत्तर की ओर चलने लगा। पिछले कई दिनों में जितना रास्ता इन्होंने दक्षिण की ओर पार किया था, उससे कहीं अधिक कुछ ही घँटों में, ये फिर उत्तर की ओर पहुँच गये। कुछ देर बाद वह सारा हिम-भाग चक्कर खाकर घूम गया। जिस भाग पर ये लोग खड़े

थे पहले वह दक्षिण की ओर था, पर घूम जाने पर वह उत्तर की ओर हो गया। इसका अर्थ यह था कि बर्फ़ में इतनी कठिनाई से जो रास्ता इन्होंने तय किया था, अब वह फिर दुबारा उसी तरह पार करना होगा। उसके बाद भी क्या होगा, इसका कोई भरोसा नहीं।

एकाएक हवा तेज़ हो गई और ५० मील प्रति घंटे की चाल से आँधी चलने लगी। वह हिमभाग तेज़ी से दक्षिण की ओर चल पड़ा। यहाँ तक तो ठीक था; पर कुछ ही देर में उसमें जहां-तहां दरारें पड़ने लगीं। अगर किसी तरह जल्दी ही किनारे पर न पहुँच सके, तो यह हिम-शैल तेज़ी से बहता हुआ बेफिन खाड़ी में पहुँच जायगा और उसकी बर्फ़ कुछ ही घंटों में पिघलकर पानी बन जायगी। भार को हल्का करने के लिये इन यात्रियों ने ज़रा भी अनावश्यक प्रतीत होने वाला सामान पानी में फेंकना शुरू कर दिया।

"हम जो कुछ कर सकते थे, कर चुके हैं। आगे भगवान् का ही भरोसा है।" ग्रीली ने अपनी डायरी में लिखा। सचमुच ही मनुष्य और क्या कर सकता है?

शायद उनकी पुकार भगवान् के कानों में पड़ी। एकाएक कुहरे में से निकलता हुआ एक हिम-शैल उन्हें दिखाई दिया, जो उनके अपने हिम-शैल और स्थल के बीच में था। अगर किसी तरह वे उस हिम-शैल पर अपने सामान समेत पहुँच सकें, तो स्थल पर पहुँचने की आशा हो सकती है। पर उस बर्फीले समुद्र में सामान सहित एक हिम-शैल पर से दूसरे हिम-शैल पर जाना सम्भव कैसे हो।

दोनों हिम-शैल एक-दूसरे के ५० फीट पास तक आ गए। दोनों के बीच में कच्ची बर्फ़ अटक जाने के कारण वे और निकट नहीं हो सकते थे। यदि दूसरे हिमशैल पर जाना हो, तो एक ही उपाय यह था कि दोनों के बीच में फँसी हुई इस कच्ची बर्फ़ पर से होकर ही दूसरे हिम-शैल पर पहुँचा जाय और अगर दोनों में से कोई भी हिम-शैल ज़रा भी हिल

गया तो ? उस समय जो कुछ भी उस कच्ची बर्फ़ पर होगा, वह पल भर में ही पानी में समा जायगा। यह तो जानते-बूझते मौत के मुँह में कूदना था। पर इसके सिवाय उपाय भी कोई नहीं। वैसे भी तो मृत्यु लगभग निश्चित ही थी।

सोचने-विचारने में देर करने का भी अवसर न था। दोनों हिम-शैल इस तरह पास-पास देर तक नहीं खड़े रहेंगे। एक छोटी सी नाव, एक स्लेज गाड़ी, रसद और अन्य सामग्री जल्दी-जल्दी उस कच्ची बर्फ़ पर होकर दूसरे हिम-शैल पर पहुँचाई गई। अभी अन्तिम व्यक्ति कच्ची बर्फ़ को पार कर ही रहा था, कि दोनों हिमशैल अलग हो गये। बड़ी मुश्किल से उस व्यक्ति को समुद्र में गिरने से बचाया जा सका।

इसके दो दिन बाद भूखे और थकान से चूर ये लोग सैबाइन अन्तरीप पहुँचे। उन्हें आशा थी कि वहाँ पहुँचते ही उनके सब कष्ट समाप्त हो जायेंगे। वहाँ जहाज़ होगा, हाथ-पैर सेकने के लिये आग होगी, खाने को बढ़िया भोजन होगा और बातचीत करने के लिये साथी होंगे।

पर इस सब के बदले वहाँ केवल एक पत्र रखा हुआ था। जो जहाज़ उन्हें लेने के लिये आया था, वह अब से दो महीने पहले लौट चुका था। रसद के नाम पर थोड़ी-सी खाद्य-सामग्री और कुछ कपड़े वह छोड़ गया था। इतने सब कष्टों से जितनी बेचैनी न हुई थी, उतनी इस एक पत्र को पढ़कर हो गई। जो सामग्री उनके लिये छोड़ी गई थी, उससे उनका दो मास तक भी निर्वाह हो पाना कठिन था। नई सहायता अगली गर्मियों से पहले आ भी नहीं सकती थी।

१८८२ में ग्रीली के दल के लिए रसद लेकर जो जहाज़ भेजा गया था, वह सैबाइन अन्तरीप तक पहुँच गया था। पर इससे आगे समुद्र में बर्फ़ थी। जहाज़ के कप्तान ने आगे बढ़ना नहीं चाहा। इससे भी अधिक

मूर्खता की बात उसने यह की कि सैबाइन अन्तरीप में केवल १० दिन के लायक खाने-पीने की सामग्री उतारकर वह वापस लौट गया। उसके जहाज़ में २५० मन खाद्य तथा अन्य सामग्री और थी। उसे वह अपने साथ ही लौटा ले गया।

१८८३ में 'प्रोटियस' नामक जहाज़ ग्रीली दल को वापस लौटा लाने के लिए भेजा गया। 'प्रोटियस' की सुरक्षा के लिए एक और छोटा जहाज़ 'थांटिक' साथ था। सैबाइन अन्तरीप के पास पहुँचकर 'प्रोटियस' बर्फ़ से टकराया और समुद्र में डूब गया। उसके नाविक 'थांटिक' पर आ गए। उन्होंने ग्रीली दल के लिए एक महीने लायक खाद्य-सामग्री तट पर उतार दी और वापस लौट गए। 'थांटिक' के कप्तान को अच्छी तरह मालूम था कि ग्रीली दल का जीवन इस सामग्री पर ही निर्भर होगा, जो वह छोड़े जा रहा था। उस समय भी 'थांटिक' में ढेरों खाद्य-सामग्री थी, जो आसानी से वहाँ छोड़ी जा सकती थी। पर उसे अपने साथ-साथ लिए 'थांटिक' वापस दक्षिण की ओर लौट गया।

इसके दो मास बाद ग्रीली दल सैबाइन अन्तरीप पहुँचा था।

जिस अमेरिकन सरकार ने ग्रीली दल को ध्रुव-प्रदेश में भेजा था, वह भी इस दल को बचाने या उसकी खोज-खबर लेने के लिए बहुत चिन्तित प्रतीत नहीं होती थी। लोगों ने समझ लिया था कि ग्रीली दल के सब सदस्य मर चुके होंगे, और उनकी खोज पर पैसा खर्च करना बेकार है। पर ग्रीली की पत्नी ने अखबारों में ज़ोरदार आन्दोलन किया, जिसके फलस्वरूप सहायता पहुँचाने के लिए फिर एक जहाज़ भेजने का निश्चय किया गया। पर कानूनी अड़चनों के कारण यह जहाज़ २४ अप्रैल १८८४ से पहले रवाना नहीं हो सका।

परन्तु ग्रीली दल तो अक्टूबर १८८३ में ही सैबाइन अन्तरीप पहुँच गया था। अब उन लोगों के सामने इसके सिवाय कोई उपाय नहीं था कि जैसे भी हो सके ध्रुव-प्रदेश की भयंकर शीत-ऋतु को अपने अल्प

साधनों द्वारा बिताएँ। यदि उसके बाद भी वे जीवित रह गए, तो शायद अगली गर्मियों में कोई और जहाज सहायता लेकर आ जाय।

उन्होंने जैसे-तैसे एक छोटी-सी कोठरी बना ली। यह इतनी छोटी थी कि सब लोग पाँव फैलाकर सो भी नहीं सकते थे। इसकी ऊँचाई इतनी थी कि बैठे-बैठे भी सिर उसकी छत से छूता था। कोठरी इतनी तंग थी, फिर भी सर्दी किसी तरह कम नहीं होती थी। तापमान शून्य से ४५ डिग्री नीचे गिर चुका था।

ध्रुव-प्रदेश की लम्बी रात शुरू हो गई थी, अब कई महीनों तक अँधेरा ही रहेगा। प्रकाश और गर्मी देने वाला सूर्य कई सप्ताह तक दिखाई न पड़ेगा। यदि खाद्य-सामग्री काफी होती तो स्वस्थ शरीर शायद इस भयानक सर्दी का भी मुकाबला कर लेते। पर खाद्य-सामग्री बहुत कम थी। इसलिए सब को नाप-नापकर बहुत थोड़ा भोजन दिया जाता था, जिससे खाना या भूखा रहना एक समान ही था। पर इतना कम खाने पर भी उनकी खाद्य-सामग्री अधिक से अधिक मार्च के अन्त तक चल सकेगी। उसके बाद फिर......?

सब ओर बर्फ़ ही बर्फ़ थी। हवा सर्राटे भरती हुई चलती थी, जिसमें उड़ती हुई बर्फ़ की फुहियाँ बड़ा सुन्दर और डरावना दृश्य उपस्थित कर देती थीं। अगर खाने और पहनने को काफी होता, तो ये तरुण सैनिक शायद इन बर्फ़ीले तूफ़ानों में भी आनन्द मनाते। पर अब तो ध्रुव-प्रदेश की शीतलता इनकी जीवन-ज्योति को ही बुझाने की तैयारी करती प्रतीत हो रही थी।

शायद यों भी पड़े-पड़े मर ही जाएँगे; फिर थोड़ा-सा पुरुषार्थ ही क्यों न कर देखा जाय? एक दिन जोसेफ एलिसन और उसके तीन साथी यह खोजने के लिए निकले कि शायद कहीं समुद्र के किनारे किसी अन्य जहाज द्वारा उतारी गई खाद्य-सामग्री मिल जाय। ३५ मील दक्षिण की ओर जाने पर उन्हें इसी प्रकार उतारी गई खाद्य-सामग्री मिल भी

गई। पर दिक्कत यह हुई कि एलिसन के हाथ और पाँव बर्फ़ के कारण गल गए। उन्हें पाला मार गया। उसके लिए हिलना-डुलना भी असम्भव हो गया।

"तुम लोग मुझे यहीं छोड़ जाओ। मैं अब दल के लिए भारस्वरूप ही रहूँगा। दल की सहायता कुछ न कर सकूँगा। तुम इस खाद्य-सामग्री को ले जाओ। इससे दल के लोगों को काफी सहारा मिलेगा।" एलिसन ने अपने साथियों से अनुरोध किया। उसे इस बात पर बड़ी ग्लानि थी कि उसके हाथ-पाँव गल गए थे। अब जीवन में आनन्द भी क्या शेष था?

पर उसके साथियों ने उसकी बात मानने से साफ इन्कार कर दिया। खाद्य-सामग्री और एलिसन दोनों को उठाकर ले चलना उनके बस का न था। उन्होंने खाद्य-सामग्री को वहीं छोड़ दिया और एलिसन को उठाकर वापस ले आए। वह एक सप्ताह तक तो बार-बार अपने साथियों से यही अनुरोध करता रहा कि वे किसी तरह उसकी हत्या कर दें, जिससे इस हाथ-पाँव-हीन पराश्रित जीवन से उसे छुटकारा मिल जाय; पर कुछ समय बाद उसकी उदासी कम हो गई और वह फिर प्रसन्न रहने लगा।

रात के समय ग्रीली चर्बी के दिए की रोशनी में बाइबिल पढ़कर सबको सुनाता। कुछ लोग ऐतराज करते कि यह तो उपयोगी चर्बी को बरबाद करना है। पर ग्रीली का विचार था कि इससे लोगों को मानसिक बल प्राप्त होगा, और उसी के द्वारा वे आगामी महीनों में आने वाले कष्टों को सह पाएँगे; अन्यथा वे सब पागल हो जाएँगे।

१८ जनवरी १८८४ को दल के एक सदस्य क्रास की मृत्यु हो गई। मृत्यु भूख के कारण हुई थी। जितने कम भोजन को खाकर और लोग शरीर और प्राणों को साथ बनाए रख रहे थे, उतने से वह जीवित नहीं रह सकता था। इस तरह विदा होने वाला यह पहला सदस्य था। शायद और भी बहुतों को इसी तरह विदा होना होगा। कपड़े में लपेट

कर उसके शव को अपनी कोठरी से कुछ ही दूरी पर बर्फ़ में दफ़ना दिया गया।

२ फरवरी को जार्ज राइस तथा एस्किमो जैन्स एडवर्ड ने निश्चय किया कि वे जमे हुए समुद्र को पार करके ग्रीनलैंड जाएँ और वहाँ के एस्किमो लोगों से कुछ सहायता प्राप्त करें। साहस और उत्साह उनमें अधिक था, शारीरिक बल कम। वे चले गए। चार दिन बाद परिश्रान्त और निराश होकर वे लौट आए। समुद्र का पानी जमकर कठोर बर्फ़ नहीं हुआ था; इसलिए उसके पार जा पाना सम्भव न हुआ।

लोगों का उत्साह बढ़ाने के लिए ग्रीली ने रोटी का राशन प्रति व्यक्ति एक तोला बढ़ा दिया। उसने अपनी डायरी में लिखा—"यह बड़ा ही निष्ठुर खेल है। मैं जानता हूँ कि अगले सप्ताह मुझे यह राशन दो तोला कम कर देना पड़ेगा।"

चर्बी समाप्त हो गई। दिए की रोशनी में बाइबिल पढ़ना भी बन्द हो गया। तब ग्रीली अँधेरे में ही भूगोल और इतिहास के सम्बन्ध में भाषण दे देकर लोगों का जी बहलाने लगा।

इन सब कष्टों के होते हुए भी ग्रीली ने अनुशासन को खूब कठोर बनाए रखा। सवेरे उठना, लिखित आदेश देना और रिपोर्ट तैयार करना पहले की ही तरह जारी रहा। उसे मालूम था कि सैनिकों का स्वास्थ्य और धैर्य इस अनुशासन के द्वारा ही बना रह सकता है।

सारी बातचीत भोजन के बारे में ही होती थी। सपने भी भोजन के ही आते थे। जो चीज़ वस्तुतः प्राप्त नहीं थी, उसके बारे में कल्पना करके और तरह-तरह की बातें करके ही लोग जी बहलाते थे।

आखिर मार्च के अन्त में सूर्य फिर उदय हुआ। एक दूसरे की शक्लें उसके प्रकाश में फिर दिखाई पड़नी शुरू हुईं। भूख, सर्दी, उद्वेग और दुर्बलता के कारण वे इतनी बदल गई थीं कि पहचानी नहीं जाती थीं। उन्हें देखने का मन भी न होता था। पर इस सारे कष्ट में भी लोगों ने विचित्र सहिष्णुता प्रदर्शित की थी। उन्होंने धैर्य, आत्मसंयम और अनुशासन बनाए रखा था।

६ अप्रैल को जार्ज राइस और जूलियस फ्रैडरिक फिर उसी खाद्य-सामग्री की खोज में चले, जिसे पहली बार एलिसन को पाला मार जाने के कारण छोड़ आना पड़ा था। कई दिन तक वे व्यर्थ भटकते रहे। वह सामग्री न मिली। आखिर जार्ज राइस का शरीर सर्दी से अकड़ने लगा। थोड़ी ही देर में वह मर गया। फ्रैडरिक बड़ी मुश्किल से अकेला वापस लौट सका। जार्ज राइस का बचा हुआ राशन वह अपने साथ ले आया था। ऐसी भुखमरी की अवस्था में वह उसे रास्ते में स्वयं भी खा सकता था; पर उसने खाया नहीं; वापस आकर सांझे भंडार में जमा करा दिया।

९ अप्रैल को लौकवुड भी भूख के कारण चल बसा। मरने से दो दिन पहले तक भी वह तापमान का ब्यौरा तैयार करता रहा था।

इजराइल इस दल में खगोल-विशेषज्ञ था। २६ मई को उसकी हालत बहुत बिगड़ गई। वह उठकर बैठ भी नहीं सकता था। वह सारे समय अपने घर के बारे में ही बातें करता रहता था। ग्रीली ने उसे एक

चम्मच ब्रांडी दी। ब्रांडी से उसने बचना तो क्या था, पर हाँ, उसे शान्ति काफी मिली। उसी दिन वह चल बसा।

वैसे तो यह अग्निपरीक्षा सभी के लिये बहुत भयंकर थी, पर इसके सम्मुख हार मानी केवल चार्ल्स हैनरी ने। यह भोजन चुरा-चुराकर खाने लगा, जबकि और लोग भूखों मर रहे थे। परिणाम यह हुआ कि और सब तो कमजोर हो गये थे, पर वह औरों की तुलना में बहुत हृष्ट-पुष्ट था। इस बात का संकट था कि कहीं वह सारे भोजन पर अधिकार कर लेने के लिये औरों की हत्या न कर डाले, या फिर औरों को मार कर उनका मांस खाकर भी अपने प्राण बचाने की चेष्टा करे। कोई उपाय न देखकर सर्वसम्मति से ६ जून को उसे गोली मार दी गई।

भोजन समाप्त हो गया। एक स्लैज गाड़ी पर सील मछली का चमड़ा मढ़ा हुआ था। उसे उतारकर उसके टुकड़े करके सब में बांट दिये गये। उसे खाकर लोगों ने भूख मिटाने की कोशिश की। लोगों ने अपने चमड़े के जूते और दस्ताने तक उतारकर खा डाले। ग्रीली के पास सील मछली के चमड़े की एक जाकेट थी और उसके सोने के थैले पर भी चमड़ा मढ़ा हुआ था। ये दोनों चीजें उसने सदस्यों को सौंप दी। सबको बराबर हिस्सा बांट दिया गया।

एक दिन एकाएक यह विचार उठा कि यह भी तो सम्भव है कि एलिसन और सब लोगों के मर जाने के बाद भी जीवित बच रहे। उस समय उसे खिलायेगा पिलायेगा कौन? सावधानी के तौर पर उसके गले हुए हाथ में एक चम्मच बाँध दी गई, जिससे आवश्यकता होने पर वह स्वयं भी भोजन खा सके, बशर्ते कि उसे कुछ भोजन प्राप्त हो सके।

वैज्ञानिक अनुसंधान अब भी जारी था। एक हिमशैल से दूसरे हिमशैल पर आते समय बैरोमीटर (वायु का दबाव नापने का यन्त्र) टूट गया था, परन्तु वायु की दिशा और वेग, तथा तापमान आदि का ब्यौरा अब तक भी पहले की ही तरह तैयार किया जा रहा था। लौंग कहीं से

एक विचित्र प्रकार की मछलियों के बारह नमूने लाया था। लोगों ने भूख के मारे सब कुछ खा डाला था, पर इन मछलियों को उन्होंने अलकोहल में सुरक्षित ही रखा था।

"६ वर्ष पहले मेरा विवाह हुआ था, तीन वर्ष पहले मैं अपनी पत्नी से विदा होकर इस यात्रा पर आया था।" २० जून को ग्रीली ने अपनी डायरी में लिखा।

२२ जून को केवल सात सदस्य जीवित बचे थे। उन्हें भी अपना अन्त सामने दिखाई पड़ रहा था। हवा तेज़ चलने लगी और बर्फ जोरों से पड़नी शुरू हुई। ग्रीली ने बाइबिल खोलकर मृत्यु-काल की प्रार्थनाएँ पढ़नी शुरू कर दीं।

"आज दोपहर बुचानान के जलडमरूमध्य के किनारे के पास बर्फ बिलकुल समाप्त हो गई है।" ग्रीली ने अपनी डायरी में लिखा। इसके बाद डायरी समाप्त हो जाती है।

आधी रात के समय ग्रीली को लगा कि तूफान की सनसनाहट के बीच उसे किसी जहाज का भोंपू बजता सुनाई पड़ा। वे सब अधीरता से प्रतीक्षा करने लगे। उसके कुछ देर बाद उन्हें अपरिचित मनुष्यों की आवाजें सुनाई पड़ीं। पिछले तीन बरस में वे पहले अपरिचित मानव-स्वर उन्हें सुनाई पड़े थे। आखिरकार २४ अप्रैल १८८४ को चला हुआ सहायता का जहाज सैंवाइन अन्तरीप तक आ पहुँचा था। इसका कप्तान बिनफील्ड स्काट स्कली कुहरे और बर्फ का सामना करता हुआ आगे और आगे ही बढ़ता आया था।

एलिसन असहाय-सा बैठा अपने हाथ में बंधी चम्मच को मुँह में डाले चूस रहा था। मारिस कौनेल इस तरह लुढका पड़ा था, जैसे मर ही गया हो। ब्रेनर्ड अपनी सारी शक्ति लगा कर उठ खड़ा हुआ और उसने सलामी दी। केवल फ्रैडरिक और लौंग आगे बढ़कर इन नवागन्तुकों का स्वागत कर सके। दल का परिचारक बियेड्यूबैक उस समय भी घिसट-

घिसट कर लोगों की सेवा में जुटा था। उसने बेहोश कौनेल के मुँह में एक चम्मच ब्रांडी डाली।

"ग्रीली, ग्रीली, तुम्हारा यह क्या हाल है?" स्कली ने ज़ोर से पूछा।

ग्रीली आधे होश में था। आवाज़ सुनकर उसने आँखें खोलीं। स्कली की ओर देखा, अपनी ऐनक जरा ठीक की और कहा : "तुम आ गए। तुम्हें देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।" और वह अचेत हो गया।

एलिसन वापस आते हुए रास्ते में ही मर गया। वह छः मास तक बिना हाथ-पाँव के जीवित रहा था। शेष छः व्यक्ति वापस अमेरिका पहुँचते-पहुँचते काफी स्वस्थ हो गये थे।

ग्रीली उसके बाद भी लगभग पचास वर्ष और जीवित रहा। मार्च १९३५ में ९१ वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु हुई।

मौत से खिलवाड़ ६

जंगल में जाकर बाघ, चीते या तेंदुए को गोली से मारने का काम भी कम जोखम से भरा नहीं है। बहुत बार ऐसे अवसर आ जाते हैं, जब शिकारी के अपने ही प्राणों पर आ बनती है। हिंस्र पशु का शिकार करना तो दूर, अपनी रक्षा कर पाना ही कठिन हो जाता है। परन्तु इन हिंस्र पशुओं को पकड़ना और उन्हें सधाकर उनके साथ तरह-तरह के खेल करना कुछ अलग ही बात है। इसके लिए बहुत अधिक साहस की आवश्यकता है।

परन्तु मनुष्य के साहस की भी जैसे सीमा ही नहीं है। सरकस के खिलाड़ी इन वन-पशुओं के साथ लोहे के जंगलों के अन्दर बन्द होकर न केवल संकटपूर्ण खेल करते हैं, बल्कि और भी नए-से-नए रोमांचकारी खेलों की कल्पना करके उन्हें क्रियान्वित करने का यत्न करते हैं। यह ठीक है कि सरकस के पशु सधाये जाते हैं और उनका शिक्षक जानता है कि उन्हें किस तरह वश में रखना है, पर हमें एक क्षण को भी यह नहीं भूलना चाहिए कि सरकस के शेर, बाघ और चीते भी असली शेर, बाघ और चीते ही होते हैं। हिंसा की उत्तेजना उनकी नस-नस में भरी होती है और पहला मौका मिलते ही वे स्वाधीन होने के लिए भरपूर यत्न करते हैं। शिक्षक को मार डालना इस कोशिश का पहला कदम होता है।

यहाँ हम हिंस्र पशुओं के साथ वर्षों तक खेल दिखाने वाले शिक्षक

अल्फ्रेड कोर्ट के कुछ संस्मरण दे रहे हैं, जिनसे इस बात की कुछ झाँकी मिल जायगी कि इन हिंस्र पशुओं के शिक्षकों को कितने संकट में रह कर अपना काम करना होता है। अल्फ्रेड कोर्ट के अपने ही शब्दों में पढ़िए :

एक समय में एक ही जाति के पशुओं के साथ खेल तो मैं बहुत बार दिखा चुका था; इतनी अधिक बार कि मैं उससे ऊब चला था। सरकस के लीलावृत्त (रिंग) में मेरे साथ एक ही समय में आठ-आठ बाघ या छः-छः शेर या पाँच-पाँच भालू रहते थे। उनके साथ खेल करते समय मुझे कोई कठिनाई नहीं होती थी। मुझे केवल यह ध्यान रखना होता था कि वे असावधान पाकर मुझ पर हमला न कर बैठें। अपना बचाव वे स्वयं कर सकते थे; और आम तौर से एक दूसरे पर हमला करते भी नहीं थे।

अब मेरे मन में यह धुन सवार हुई थी कि किसी तरह एक ही समय कई जातियों के हिंस्र पशुओं को लीलावृत्त में एक साथ लाया जाय। शेर, बाघ, भालू, चीते और कुत्ते एक साथ एक ही खेल में दिखाए जा रहे हों। यह काम बहुत कठिन था, इस बात को मुझसे अधिक कोई नहीं जानता था। पर फिर भी मैंने इस खेल को करके दिखाने का दृढ़ संकल्प कर ही लिया।

उस समय मेरे पास आठ भालू, आठ शेर, पाँच बाघ और कुछ बढ़िया नस्ल के कुत्ते भी थे। इनमें से अपने इस सम्मिलित खेल के लिए अच्छे से अच्छे जानवर मैं छाँट सकता था। जो जानवर उद्दंड थे, उन्हें मैं इस खेल में शामिल नहीं करना चाहता था।

परन्तु विभिन्न जातियों के पशुओं को एक लीलावृत्त में साथ लाना अपने आप में बड़ी समस्या थी। बाघ कुत्तों को सामने पाकर किसी भी तरह उन्हें जीता छोड़ने को तैयार नहीं थे। शेर भालुओं को सामने पाते ही गुर्राने लगते थे और पहला अवसर मिलते ही उन पर टूट पड़ते थे।

उन पशुओं का बचाव करते समय यदि मैं स्वयं किसी समय असावधान हो जाऊँ, तो उनमें से कोई सा भी पशु मुझ पर आक्रमण कर सकता था। इन पशुओं की हिंसक भावना जरा देर के लिए भी शान्त नहीं होती। वे तभी तक शिक्षक के काबू में रहते हैं, जब तक उन्हें मालूम रहे कि शिक्षक की निगाह उन पर है, और वे शिक्षक को किसी तरह की हानि नहीं पहुँचा सकते। पर अगर उन्हें जरा-सा भी सन्देह हो जाय कि इस समय शिक्षक का ध्यान उनकी ओर नहीं है, तो वे तुरन्त हमला करते हैं।

पहले-पहल मैंने शेरों और बाघों को एक साथ लीलावृत्त में बुलाया। जब-जब भी उन्होंने आपस में झगड़ने की कोशिश की, तभी मैंने चाबुक फटकारकर उन्हें धमका दिया। कुछ दिन के बाद शेर और बाघ एक दूसरे के साथ रहने के अभ्यस्त हो चले। तब मैंने उनके साथ ही भालुओं को भी लीलावृत्त में लाने की कोशिश की। शेर और बाघ एक ओर बिठा दिये गए, और दूर एक कोने में भालू को रखा गया। जब भी बाघों ने उचककर उस ओर देखा, तभी मैंने चाबुक मारकर उन्हें समझा दिया कि उन्हें इस तरह ताक-झाँक करने की कोई जरूरत नहीं है।

जब कुत्ते पहले-पहल शेरों, बाघों और भालुओं के साथ लीलावृत्त में लाये गए तो फिर अनुशासन की इसी प्रक्रिया को दुहराना पड़ा। पर सफेद भालुओं के इस दल में सम्मिलित होने पर शेरों को किसी तरह काबू में नहीं रखा जा सका। मुझे पहले से ही इस बात का डर था कि कुछ गड़बड़ हो सकती है, इसलिये शेरों और बाघों की गर्दनों में फन्दे डाल दिये गए थे। पर सफेद भालुओं को देखते ही सब बाघ और शेर बेकाबू हो उठे। उन्होंने मेरी आज्ञा मानने से इन्कार कर दिया। दो बाघों की गर्दनों के फन्दे ढीले रह गये थे। उन्हें तोड़कर उन्होंने भालुओं पर हमला कर दिया और एक भालू को वहीं पर मार डाला। दूसरा भालू

डरकर लीलावृत्त के पिछले भाग की ओर दौड़ गया। हिमालय के भालू भी घबरा गए। उनमें से एक तो लीलावृत्त की लोहे की सलाखों के ऊपर चढ़ गया और गुर्राने लगा।

इन जानवरों को एक साथ एक लीलावृत्त में रहकर खेल दिखाने के लिये सधाने में मुझे कई महीने लग गए। इस तरह की दुर्घटनाएँ कई बार घटीं, जबकि पशुओं ने मेरी आज्ञाओं को न मानकर अपने साथी पशुओं पर हमला कर दिया। उनके इस प्रकार के हर हमले के बाद मुझे हमला करने वाले पशुओं को कड़ी सजा देनी पड़ती थीं, जिससे वे इस बात को समझ जायें कि इस तरह अपने साथी पशुओं पर हमला करने का फल बहुत बुरा होता है। इतना समझने की बुद्धि पशुओं में भी होती है। धीरे-धीरे मेरे पशु भी इस बात को समझ गए; और जैसा मैं चाहता था, वैसा खेल दिखाने के लिए तैयार हो गए।

जब अन्त में मैंने अपना यह खेल जनता के सामने प्रस्तुत किया तो यह बहुत सफल रहा। दर्शकों ने प्रशंसा में तालियाँ बजा-बजाकर आकाश तक गुँजा दिया। यूरोप में जहाँ-जहाँ भी हमने यह खेल दिखाया, वहीं इसकी खूब तारीफ हुई। यूरोप का दौरा पूरा होने से पहले ही हमारे सरकस को इंग्लैंड से बुलावा आ गया और हम इंग्लैंड जा पहुँचे।

अपने इस खेल में मुझे जो सफलता मिली थी, उससे मेरा उत्साह चौगुना हो गया। मैंने निश्चय किया कि अभी तक मैं सोलह जानवरों से खेल दिखाता हूँ, अब इनकी संख्या बढ़ाकर पच्चीस कर दूँगा। यद्यपि इसमें मुझे खर्च भी काफी करना पड़ता, और मेहनत भी बहुत करनी पड़ती, पर मैं इस योजना को भी पूरा करके ही छोड़ता, यदि उन्हीं दिनों एक भयंकर दुर्घटना न हो जाती।

यह सन् १९२५ की बात है। मई का महीना था। हमारे सरकस का रात के समय अन्तिम खेल समाप्त होने ही वाला था। सरकस का पंडाल दर्शकों से खचाखच भरा हुआ था। शायद ही कोई दर्शक ऐसा

हो, जिसने हमारे खेलों को देखकर जी भर आनन्द प्राप्त न किया हो। पहले मैंने भालुओं को लीलावृत्त से निकालकर उनके कठघरों में वापस भेज दिया। उसके बाद बाघ और शेर भी बारी-बारी से अपने कठघरों में भेज दिए गए। चीते और कुत्ते भी यथास्थान चले गए। मैं अपने तम्बू में आकर कपड़े बदल रहा था। तभी एकाएक मेरा मैनेजर बदहवास भागा हुआ मेरे तम्बू में घुस आया। वह केवल इतना ही कह सका—"बाघ और शेर भाग गये!"

मैं एकाएक कुछ न समझ सका। पर इतना अवश्य समझ आ गया कि बड़ी भयंकर बात हो गई है। पूछने पर मैनेजर ने बताया कि कठघरों के दूसरी ओर के दरवाजे ग़लती से खुले रह गए थे। इसलिए जब बाघ और शेर लीलावृत्त से निकलकर कठघरों में घुसे तो दरवाजे खुले पाकर सीधा बाहर दर्शकों के बीच में आ पहुँचे। एक भी दर्शक शेरों और बाघों को अपने इतने पास देखने के लिये नहीं आया था। बदहवास होकर लोग, जिधर मुँह उठा उधर ही भाग खड़े हुए। सब ओर कुहराम-सा मच गया। इस शोरगुल और चीख-पुकार से शेर और बाघ भी घबरा गये और वे भी भीड़ के साथ-साथ भागने लगे।

मैं मैनेजर के साथ तुरन्त बाहर आया। वहाँ अजीब ही दृश्य था। लगता था कि ग़दर हो रहा है। सभी लोग डर के मारे आपे से बाहर थे। कुछ भाग रहे थे, कुछ चिल्ला रहे थे, कुछ गिर पड़े थे और कुछ खड़े के खड़े रह गये थे। एक बाघ भी इस भीड़ के बिलकुल पास ही एक गाड़ी के नीचे दुबका खड़ा था। वह इस भयंकर कोलाहल से बुरी तरह डर गया था। अपने आदमियों को कहकर मैंने उस गाड़ी के चारों ओर लोहे का पिंजरा खड़ा करवा दिया। उसके बाद उसे कैसे पकड़ना है, यह मेरे सभी आदमी जानते थे। पर मैं उसके पकड़े जाने की प्रतीक्षा न कर सका, क्योंकि तभी मुझे खबर मिली की एक शेर एक रेस्तरां में जा घुसा है।

मैं तुरन्त उस रेस्तराँ में पहुँचा। वहाँ भी अच्छा खासा कुहराम मचा हुआ था। शेर शीशे की बनी एक खिड़की को तोड़कर अन्दर जा घुसा था और जोर-जोर से दहाड़ने लगा था। रेस्तराँ में बैठे हुए लोग इस नये आगन्तुक के स्वागत के लिए बिलकुल तैयार नहीं थे। शहर के ठीक बीचोबीच रेस्तराँ में इस तरह एकाएक शेर आ घुसेगा, इसकी उन्होंने स्वप्न में भी कल्पना नहीं होगी। पर जब वह इस तरह अचानक आ घुसा, तो उन लोगों के होश-हवास जाते रहे। सब के सब उठकर एक साथ दरवाजे की ओर लपके। किन्तु दरवाजे पर घूमने वाला फाटक लगा हुआ था जिसमें से एक समय में एक ही व्यक्ति निकल सकता था। पीछे से भीड़ का दबाव पड़ने के कारण वह फाटक मशीन के पहिये की तरह तेजी से घूम रहा था और लोग उसमें से इस तरह निकलते आ रहे थे, मानो अभी मशीन में से बन-बनकर निकल रहे हों।

मैं अपने एक सहकारी को साथ लेकर अन्दर पहुँचा। रेस्तराँ के अन्दर का वह दृश्य मुझे कभी नहीं भूलेगा। मेज-कुर्सियाँ उलटी, सीधी और टेढ़ी हुई पड़ी थीं। कहीं प्लेटें मेज से गिरकर टूटी पड़ी थीं, और कहीं गिलास टूटे पड़े थे। भागने वाले लोगों ने खाद्य-सामग्री का लोभ बिलकुल नहीं किया था। जो जैसी दशा में था, वैसे ही भाग खड़ा हुआ था। इस सब जूठी, छूटी हुई खाद्य-सामग्री के बीच यह शेर अपनी विस्मयभरी भंगिमा में खड़ा था। उसने मुझे देखते ही पहचान लिया। मैंने जोर-जोर से उसका नाम लेकर पुकारा। सावधानी के साथ हमने उसे खदेड़ कर एक कोने में कर दिया और उसके गले में रस्सी का फंदा डाल दिया। मेरा सहकारी दूसरा फंदा डालने की तैयारी कर ही रहा था कि शेर एकदम दबककर जमीन पर बैठ गया। फिर एकाएक तेजी से उसने झपटकर मेरे सहकारी का कन्धा झंझोड़ डाला। कन्धे से खून की धार बह चली। सहकारी बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ा। बड़ी मुश्किल से शेर को काबू करके कठघरे में बन्द किया जा सका।

भले ही हमने एक बाघ और एक शेर को पकड़कर काबू कर लिया था, किन्तु अब भी छः शेर और दो बाघ शहर में खुले फिर रहे थे। वे कहाँ हैं, यह भी हमें पता नहीं था। इ। बीच में शहर के मेयर ने मुझे बुलवाया और कहा "मैं टेलीफ़ोन करके फौज को बुला रहा हूँ जिससे सैनिक आ कर शहर में घूम रहे इन खूँख्वार जानवरों को गोली मार द।"

गोली मार दें ! मैं इस बात की कल्पना से भी कांप उठा। छः शेर और दो बाघ खरीद पाना मेरे लिए आसान काम नहीं था। पहले इन जानवरों की कीमत बहुत अधिक होती है, और उतनी कीमत पर भी ये जानवर आसानी से कहीं मिलते नहीं हैं। इसके अलावा एक और बड़ा खतरा यह था कि यदि गोली लगने पर भी कोई बाघ या शेर मरा नहीं और घायल होकर भाग खड़ा हुआ, तो शहर के निवासियों के लिए कहीं अधिक खतरनाक सिद्ध होगा। मैंने मेयर से कहा, "आप मुझे केवल आज रात भर का समय दे दीजिये। इस बीच में मैं अपने जानवरों को पकड़ लूँगा। यदि पशुओं के कारण किसी व्यक्ति को कोई नुकसान पहुँचेगा, तो उसका हर्जाना मैं दूँगा।"

मेयर ने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली। अब हम पशुओं को ढूँढने निकले। मेरे कर्मचारियों ने बताया कि शेर तो भागते दिखाई पड़े थे, पर बाघ कहाँ और किधर गये, इसका कुछ पता नहीं चला। एक शेर एक मोटरगाड़ी के नीचे जा छिपा था। जब उसे पकड़ने का यत्न किया गया, तो वह भाग निकला और एक दूकान की खुली हुई खिड़की में से अन्दर जा पहुँचा। इस शेर को पकड़ने के लिए भी मैंने अपने कर्मचारियों को लगा दिया। अन्य चार शेर एक गली में दौड़ गए थे। एक आदमी को मोटर देकर मैंने उनका पीछा करने भेज दिया।

मैंने अपने एक मोटर ड्राइवर से कहा कि वह जाकर मोटर के पीछे पिंजरा गाड़ी जोड़ लाए, जिससे अगर कहीं कोई जानवर मिल जाए, तो उसे कठघरे में बन्द किया जा सके। ड्राइवर ने ज्योंही मोटर का इंजन

चालू किया, त्योंही उसके नीचे से दो बाघ निकले। उन पर अब तक किसी की नजर नहीं पड़ी थी। मोटर के नीचे से निकलते ही वे तेजी से चौराहे को पार करके एक गली में भाग खड़े हुए। मैं भी उनके पीछे भागा। मेरा मैनेजर स्टोल और सहकारी त्रोबका भी मेरे साथ भागे। इनमें से एक बाघ तो कुछ ही दूर जाकर एक कसाई की दूकान में जा घुसा। मैंने त्रोबका को उस दूकान के सामने पहरा देने के लिये खड़ा कर दिया और स्टोल के साथ दूसरे बाघ के पीछे भागा।

कुछ ही दूर सामने एक कमरे में बत्ती जल रही थी। न जाने क्या सोचकर बाघ उसी कमरे की ओर बढ़ा और खिड़की के रास्ते कूदकर कमरे के अन्दर जा पहुँचा।

यह घर एक नवविवाहित दम्पति का था। उनका उसी दिन विवाह हुआ था और वे अपनी सुहागरात मनाने की तैयारी कर रहे थे। वे अभी उठकर ऊपर सोने के कमरे में जाने ही लगे थे कि बाघ कमरे में आ कूदा। उसे देखकर दोनों अपने प्राण बचाने के लिये बदहवास होकर दौड़े। उन्होंने अपने सोने के कमरे में घुसकर उसे अन्दर से बन्द कर लिया और खिड़की के पास खड़े होकर सहायता के लिये चिल्लाने लगे।

मैं और स्टोल तुरन्त ही वहाँ जा पहुँचे। मुझे वह दृश्य भूल नहीं सकता। स्टोल उन्हें धीरज बँधाते हुए कह रहा था: "बाघ सरकस से निकल भागा है। घबराने की कोई बात नहीं। बाघ बहुत ही भला पशु होता है। वह तुम्हें कुछ भी न कहेगा। वह बिलकुल खतरनाक नहीं है।"

पर उसकी इस सान्त्वना से नवदम्पति को ज़रा भी तसल्ली न हुई। भय के मारे उनके चेहरे सफेद पड़ गये थे और उनकी आवाज़ कांप रही थी। इस समय वे ऊपर की मंजिल में थे और बाघ नीचे की मंजिल में था। जिस कमरे में बाघ था, उसकी खिड़की के सामने कठघरा लगाकर मैंने दरवाजा खोला। बाघ जोर से दहाड़ा और उछलकर सीढ़ियों की ओर लपका। वह उसी कमरे के दरवाजे के सामने जाकर खड़ा हो गया,

जिसमें पति-पत्नी मौजूद थे। बाघ की दहाड़ सुनकर पति-पत्नी की हालत बहुत ही बुरी हो गई। कुछ देर तक तो उनके गले से आवाज ही न निकली। उसके बाद पति खिड़की पर आकर जोर-जोर से चिल्लाने लगा : "जल्दी आओ; जल्दी आओ ! तुम्हारा बाघ दरवाजा तोड़े डाल रहा है। मेरी पत्नी बेहोश हो गई है।"

मुझे ऐसा लगा कि शायद बाघ कमरे के अन्दर पहुँच गया है। मुहल्ले के सब लोग जाग उठे थे और खिड़कियां खोलकर हमारी ओर झाँक रहे थे। उनमें से हर एक अलग-अलग सलाह दे रहा था। एक आदमी ने कहा : "सीढ़ी लगाकर ऊपर चढ़ जाओ और उन बेचारों को बचाओ।"

मैं और स्टोल सीढ़ी लगाकर ऊपर उस कमरे में जा पहुँचे। पत्नी बेहोश होकर फर्श पर गिरी हुई थी, पति जल्दी-जल्दी मेज, कुर्सी, आलमारी, जो कुछ भी मिले, धकेल-धकेलकर दरवाजे के पास रख रहा था, जिससे बाघ एकाएक दरवाजा तोड़कर अन्दर न घुस आए। हमने उसे ढाढ़स बँधाया। मैंने कहा "मैं बाघ का शिक्षक हूँ। मेरे सामने बाघ तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता।"

थोड़ी देर में पत्नी होश में आ गई। उन दोनों को हमने सीढ़ी से नीचे उतार दिया।

अभी हम इस बाघ को पकड़ने का उपाय सोच ही रहे थे कि हमारे सरकस की एक लारी वहाँ आई। मेरे कर्मचारियों ने बताया कि चार शेर लगभग आधा मील दूर दिखाई पड़े हैं। शेर और भी दूर निकल जा सकते थे, इसलिए इस बाघ को पकड़ने का काम मैनेजर स्टोल को सौंपकर मैं तुरन्त उन चार शेरों को ढूँढने चल पड़ा। हमारी लारी कुछ ही मिनट में वहाँ पहुँच गई, जहाँ वे शेर एक छोटे से बगीचे में घुसे हुए थे। मोटर का प्रकाश देखकर वे जोर-जोर से दहाड़ने लगे। सारे मुहल्ले में तहलका मच गया। मैंने एक आदमी को पिंजरा गाड़ी लेने के लिए

भेजा। उसी समय वर्षा शुरू हो गई। हमारे शेर पानी में भीग गए। घण्टे भर बाद पिंजरागाड़ी आ गई और बड़ी मुश्किल से हमने उन शेरों को काबू करके कठघरों में बन्द किया। उस रात मेरे जानवरों ने कई आदमियों को घायल कर दिया था, जिसके हर्जाने के तौर पर मुझे पैंतीस हजार रुपए देने पड़े।

कुछ दिन बाद हम अपना सरकस लेकर स्पेन में जा पहुँचे। मैड्रिड में मैंने वहीं के एक आदमी वरगास को शेरों का खेल दिखाने के लिए रख लिया था। वरगास बहुत साहसी और कुशल व्यक्ति था। कुछ ही दिनों में वह शेरों के खेल अच्छी तरह दिखाने लगा।

एक दिन खेल देखने के लिए उच्च सरकारी अफसर आये हुए थे। उस दिन वरगास ने विशेष उत्साह के साथ खेल दिखाया। एकाएक उसकी नज़र चूकी और मौका पाकर एक शेर ने उस पर हमला किया। मेरा सहकारी डिकाक उसे बचाने के लिए दौड़ा, पर सहायता पहुँचने से पहले ही शेर ने वरगास के कंधे पर गहरा घाव कर दिया, जिसके कारण वरगास को तीन महीने तक अस्पताल की चारपाई पर लेटे रहना पड़ा।

वरगास की जगह मैंने अपने एक पुराने कर्मचारी मोलियर को लगाया। डिकाक शेरों का खेल दिखाता था। मैं विभिन्न जातियों के पशुओं का इकट्ठा खेल दिखाता था। अब बाघों का खेल दिखाने का काम मैंने मोलियर को सौंप दिया। मोलियर ने बड़े उत्साह के साथ बाघों का खेल दिखाना मंजूर कर लिया। मेरे पास बरगा, सीज़र और रायल बंगाल तीन बाघ थे। ये तीनों ही बहुत भयानक थे। मैंने मोलियर को बार-बार सतर्क रहने के लिए कहा। मैं स्वयं भी लीलावृत्त के दरवाज़े के पास ही खड़ा था, जिससे आवश्यकता पड़ने पर तुरन्त सहायता कर सकूँ। मैंने देखा कि मोलियर बड़े मजे से खेल कर रहा है। कुछ निश्चिन्त होकर मैंने सिगरेट सुलगाई। ज्योंही मेरी दृष्टि बाघों की ओर गई, तो

मैंने देखा कि रायल बंगाल मोलियर पर झपटने की तैयारी में था। उस समय मोलियर की पीठ रायल बँगाल की ओर थी। मैंने चिल्लाकर मोलियर से सम्हलने को कहा। पर तब तक रायल बंगाल झपट चुका था और मोलियर की टाँग उसने अपने मुँह में ले ली थी। मोलियर गिर पड़ा और रायल बंगाल उसे घसीटकर दूसरे बाघों की ओर ले जाने लगा। मैं तुरन्त लीलावृत्त के अन्दर घुस पड़ा। दरवाज़े को बन्द करने का भी मुझे ध्यान न रहा। यह तो कुशल हुई कि मेरे एक कर्मचारी ने उसे बन्द कर दिया, नहीं तो बहुत सम्भव था कि बाघ लीलावृत्त से बाहर निकल भागते।

उस समय मैं खाली हाथ था। मैंने बाघ की ओर दौड़ते हुए ज़ोर से चिल्लाकर आवाज़ दी—"बंगाल, बंगाल, अपनी जगह पर जाओ!" रायल बंगाल ने मेरी आवाज़ पहचानी। उसने मोलियर को छोड़ दिया और कुछ कदम पीछे हट गया। इस समय तक बाकी छः बाघ भी, जो अब तक अपनी चौकियों पर बैठे हुए थे, नीचे उतर आए और हमारे चारों ओर घिरकर गुर्राने लगे। मोलियर बहुत घायल हो गया था, फिर भी हिम्मत करके वह उठ खड़ा हुआ; और मुझे लगा कि शायद अब वह बच जायगा।

तभी बरमा ने पीछे से आकर मुझ पर हमला किया। मैंने तुरन्त पास पड़ी हुई एक तिपाई उठाकर उस पर चोट की। मोलियर के हाथ में डंडा और चाबुक था। वह इस समय अपनी रक्षा आसानी से कर सकता था। पर बरमा के हमले से बचने के लिए मैं ज्योंही उससे ज़रा दूर हटा, त्योंही वह डरकर "मुझे बचाओ, मुझे बचाओ!" चिल्लाता हुआ लँगड़ाता-लँगड़ाता मेरी ओर दौड़ा। उसे भयभीत देखकर रायल बंगाल उस पर फिर झपटा और उसने अपने कीले मोलियर की गर्दन में गड़ा दिए। मैंने एक और तिपाई उठाकर रायल बंगाल पर फेंकी। उसने फिर मोलियर को छोड़ दिया। पर मोलियर की गर्दन में उसके कीलों के

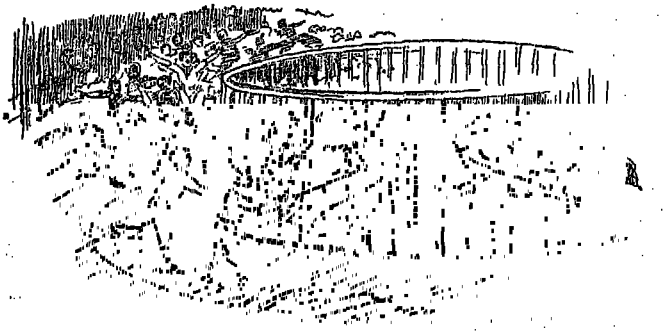

घाव काफी गहरे हो गए थे। मैंने मोलियर की बाँह पकड़कर उसे लीलावृत्त से बाहर निकाल ले जाने की कोशिश की, पर इस समय तक सभी बाघ बेकाबू हो चुके थे और हम पर हमला करने का मौका देख रहे थे। रायल बंगाल ने फिर हमला किया और मोलियर की टाँग पकड़ ली। इस बार मैंने मोलियर के हाथ से डंडा ले लिया और पूरे जोर के साथ रायल बंगाल के सिर पर मारा और उसके साथ ही 'रायल बंगाल' नाम लेकर पुकारा। इस बार रायल बंगाल सहम गया और दूर हट गया।

अभी वह मुश्किल से दो कदम हटा होगा कि बरमा ने गुर्राकर मुझ पर चोट की। अब मुझे मोलियर को छोड़कर बाघों का मुकाबला करने के लिए विवश होना पड़ा। बरमा का पंजा मेरे कंधे पर लगा, जिससे कमीज फट गई और बहुत-सा माँस भी नुच गया। मैंने एक के बाद एक तिपाई उठाकर बाघों पर फेंकनी शुरू की। बाघ पूरी तरह बेकाबू हो चुके थे। जमीन पर पड़े हुए शिकार को वे आसानी से छोड़ना नहीं चाहते थे। बाघों को पीछे हटाने की कोशिश में कुछ देर तक तो मुझे यह भी देखने का अवसर न मिला कि मोलियर जिन्दा है या मर गया। काफी देर तक बाघों से संघर्ष करने के बाद मैं मोलियर को बड़ी मुश्किल से घसीट कर लीलावृत्त से बाहर ला सका। उसके शरीर पर

कई गहरे घाव थे। सबसे भयंकर घाव गर्दन में थे। हम उसे तुरन्त अस्पताल ले गए। अस्पताल में पहुँचते ही उसने दम तोड़ दिया।

उस दिन मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि जैसे मृत्यु हम सरकस दिखाने वाले लोगों के सिर पर साच रही हो। मेरी पत्नी ने भी मुझसे बहुत आग्रह किया कि मैं इन हिंस्र पशुओं के साथ खेल दिखाना तुरन्त बन्द कर दूँ। परन्तु उस दिन शनिवार था और एक खेल दिन के तीन बजे भी होना था। घायल होने पर भी मुझे खेल दिखाने के लिए विवश होना पड़ा।

शहर में यह अफवाह फैल गई थी कि बाघों ने अपने शिक्षक को मार डाला है। इसलिए उस दिन दर्शकों की भीड़ बहुत अधिक थी। सारा पंडाल खचाखच भरा हुआ था। डिकाक ने शेरों का खेल दिखाया। उसने शेरों के साथ बहुत कठोर व्यवहार किया। अगर उसे कहा जाता तो वह बाघों का खेल भी दिखा सकता था; पर मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि मोलियर की मृत्यु के बाद बाघों का खेल दिखाने का खतरा मुझे अपने सिर पर ही लेना चाहिए।

उस दिन मैंने विशेष सावधानी बरती। लीलावृत्त के बाहर मैंने जगह-जगह आदमी खड़े कर दिए। उनके पास पानी से भरी हुई बाल्टियाँ थीं। मैंने उन्हें कह दिया था कि अगर बाघ मुझ पर हमला करें, तो उन पर बाल्टियों से पानी फेंका जाय। पानी पड़ने से वे घबरा जाएँगे और मुझे बचने का अवसर मिल जायगा। लीलावृत्त के बाहर डिकाक भी रिवाल्वर लिए मेरी सहायता के लिए तैयार खड़ा था। लीलावृत्त के अन्दर मैंने ज़मीन पर पाँच छः मजबूत डंडे भी रख छोड़े थे, जिससे ज़रूरत पड़ने पर उनका भी प्रयोग किया जा सके।

लीलावृत्त में आते ही बाघों ने मुझे पहचान लिया और क्रुद्ध होकर

गुर्राने और दहाड़ने लगे। पर इस समय मैं डरने वाला नहीं था; बल्कि मुझे उन पर क्रोध आ रहा था और उन्हें अच्छी तरह सजा देना चाहता था। विशेष रूप से रायल बंगाल को सजा देकर ठीक रास्ते पर लाना था। यदि मैं उसे बिना बात ही मारने लगता, तो वह यह न समझ पाता कि उसे क्यों दंड दिया जा रहा है। इसीलिए मैं जान-बूझकर उसे ऐसा मौका देना चाहता था कि जिससे वह मुझ पर हमला करे और फिर मैं उसे अच्छी तरह मार-मारकर सीधा कर सकूँ।

बार-बार चाबुक फटकार कर मैंने बाघों को आतंकित कर दिया। फिर भी वे बार-बार गरज रहे थे। एक बार मैंने जानबूझ कर रायल बंगाल की ओर पीठ की। पर मेरी सतर्क दृष्टि उस पर निरन्तर लगी हुई थी। मुझे असावधान समझकर रायल बंगाल अपनी चौकी छोड़कर मेरी ओर लपका। तभी मैंने तुरन्त मुँह फेरा और फिर डंडों से और चाबुक से उसे इतना मारा कि वह कुत्ते की तरह एक कोने में दबककर बैठ गया। उसके बाद भी कई मिनट तक मैं उसे पीटता ही रहा। और बाघ तो मेरा गुस्सा देखकर ही भयभीत हो गए।

इस तरह की दुर्घटनाएँ हमारे सरकस में बीच-बीच में होती रहती थीं। दुर्घटना की सबसे अधिक सम्भावना मेरे उस खेल में रहती थी, जिसमें शेर, बाघ, भालू, चीते और कुत्ते सब एक साथ मिलकर खेल दिखाते थे। एक दिन इसी खेल को दिखाते हुए दो भालू आपस में लड़ पड़े। मैं उन्हें छुड़ाने लगा तो एक शेर ने पीछे से आकर मुझ पर हमला किया। उसने मेरा पैर अपने मुँह में ले लिया। मैंने चाबुक फटकारा, पर उसने पैर नहीं छोड़ा। हताश होकर मैंने आवाज दी—"बैंकाक, बैंकाक!"

बैंकाक एक बड़ा शिकारी कुत्ता था। मेरी आवाज सुनकर वह दौड़कर आया और शेर को झंझोड़ने लगा। शेर ने मुझे छोड़ दिया और

बैंकाक पर झपटा। एक ही चोट में शेर ने बैंकाक की पीठ चीर डाली। पर बैंकाक घबराया नहीं और शेर से गुँथ गया। इतने में मुझे मौका मिल गया और मैंने एक डंडा उठाकर शेर के मुँह पर इतने ज़ोर से मारा कि उसने एकदम बैंकाक को छोड़ दिया। पर मेरे पैर के घाव में विष का असर हो गया था और उसके फलस्वरूप मुझे कई महीनों तक शेरों से दूर ही रहना पड़ा।

३ अगस्त १४९२ को कोलम्बस ने अपने जहाजों के पाल उठाने का आदेश दिया। उसकी यह यात्रा अद्‌भुत एवं साहसपूर्ण थी। उसे ज्ञात नहीं था कि समुद्र की इस अपार जल-राशि को पार करके वह कहाँ पहुँचेगा और उसका मार्ग कहाँ-कहाँ होकर जायगा। जिस पथ पर कोलम्बस चला था, उस पर उससे पहले ज्ञात इतिहास में कोई नहीं गया था, इसलिए उस समुद्र-मार्ग के सम्बन्ध में कोई नक्शा या कोई जानकारी प्राप्त नहीं थी। किन्तु कोलम्बस को एक विचित्र धुन और लगन थी। दूर अनदेखे समुद्र-तट मानो उसे पुकार रहे थे और इस पुकार को वह अनसुना नहीं कर सकता था।

जिस यात्रा का प्रारम्भ ३ अगस्त को हुआ, उसका स्वप्न कोलम्बस ने बीस वर्ष पूर्व अपने मन में देखा था। इन बीस वर्षों में उसने अपना सारा समय कई राजाओं को इस यात्रा के लिए आर्थिक सहायता देने को मनाने में व्यतीत किया था। कोलम्बस ने प्रसिद्ध यात्री मार्कोपोलो के यात्रा-वृत्तान्त पढ़े थे, जिनमें मार्कोपोलो ने कुबले खाँ के अनन्त ऐश्वर्य का वर्णन किया था। कोलम्बस ने व्यापारियों के मुख से भारत की विपुल समृद्धि के वर्णन भी सुने थे। अपनी इस साहसपूर्ण समुद्र-यात्रा द्वारा वह उन्हीं अनन्त वैभव और समृद्धि वाले प्रदेशों में पहुँचना चाहता था, जहाँ से वह जहाज-के-जहाज सोने से भर कर ला सके। वह यह भी चाहता था कि उन देशों में जाकर ईसाई धर्म का प्रचार करे।

कोलम्बस

उसने बहुत से नक्शे तैयार किये थे; और पढ़े तथा सुने वृत्तान्तों के आधार पर उन देशों के अत्यन्त आकर्षक वर्णन कंठस्थ कर लिए थे। उसने स्पेन, पुर्तगाल, और इंग्लैंड सभी के राजाओं के सम्मुख अपनी योजना प्रस्तुत की थी। किन्तु उसकी योजना इतनी अविश्वसनीय थी कि प्रायः सभी जगह से उसे निराश लौटना पड़ा। किन्तु हिम्मत हारने वाला व्यक्ति वह नहीं था। वह असम्भव को सम्भव कर दिखाने वालों में से एक था। बीस वर्षों के अविराम प्रयत्न के पश्चात् स्पेन की रानी इसाबेला ने कोलम्बस की योजना स्वीकार कर ली थी और इस यात्रा के लिए आर्थिक सहायता भी प्रदान कर दी थी। यह निश्चय किया गया था कि कोलम्बस जिन प्रदेशों को रानी इसाबेला के लिए जीतेगा, उनका उसे राजप्रतिनिधि बनाया जायगा और उनसे होने वाली आय का दस प्रतिशत भाग उसे दिया जायगा।

रानी इसाबेला का समर्थन प्राप्त हो गया; आर्थिक सहायता भी मिल गई; जहाज भी तैयार कर लिये गए; किन्तु इस यात्रा के लिए यात्री मिलने कठिन हो गए। ऐसा पागल सिरफिरा व्यक्ति कौन होगा, जो जान-बूझकर ऐसी समुद्र-यात्रा पर जाने को तैयार हो, जिसका भविष्य कुछ भी ज्ञात नहीं है। अधिक सम्भावना यही है कि जो व्यक्ति एक बार इस यात्रा पर चल पड़ेंगे; वे फिर कभी अपनी मातृभूमि के दर्शन न कर सकेंगे। पहले तो वे कहीं समुद्र में ही डूब मरेंगे; और यदि किसी प्रकार सौभाग्य से किसी द्वीप पर पहुँच भी गए, तो वहाँ से वापस लौट पाना सम्भव न होगा।

अन्त में रानी के आदेश से पालोरा और मोगेर द्वीपों के नाविक निवासियों को आदेश दिया गया कि वे कोलम्बस की यात्रा में जाने के लिए नाविकों का प्रबन्ध करें। इस प्रकार नाविकों की बलपूर्वक भरती की गई। अवसर मिलते ही ये नाविक भाग जाते थे, और फिर कहीं ढूँढे न मिलते थे। कोई भी नाविक स्वेच्छा से कोलम्बस के साथ जाने को

तैयार न था। मार्टिन अलोंजो पिन्जोन और विन्सैंट यानेज पिन्जोन दो साहसी भाई थे, जो अत्यन्त सम्पन्न परिवारों के नाविक थे। इनके अपने जहाज़ थे। इन्होंने कोलम्बस का साथ दिया। उनके प्रभाव से कुछ नाविक स्वेच्छा से भी कोलम्बस के साथ चलने को तैयार हो गए।

जिस दिन कोलम्बस के तीन जहाज़ पालोस से रवाना हुए, उस दिन सारे पालोस नगर पर उदासी छा गई। यह नगर छोटा-सा था और प्रत्येक परिवार का कोई-न-कोई व्यक्ति इस दुस्साहसपूर्ण अभियान में जा रहा था। स्वयं यात्री नाविकों के मन में भी भय बैठ गया था। उनमें से कई तो फूट-फूटकर रोने लगे। अपने सम्बन्धियों से उन्होंने इसी प्रकार विदा ली, जैसे अब वे उनसे जीवन में फिर कभी न मिलेंगे।

एक जहाज़ 'सांटा मेरिया' का संचालन कोलम्बस स्वयं कर रहा था। दूसरे जहाज़ 'पिंटा' का अध्यक्ष मार्टिन अलोंजो पिन्जोन था और तीसरा जहाज़ 'नीना' विन्सैंट यानेज पिन्जोन की अध्यक्षता में था। यात्रा शुरू हुई। कोलम्बस के अनुमान से उन्हें समुद्र में सीधा पश्चिम की ओर १५०० मील तक जाना था। उनके जहाज़ आजकल के वाष्प-चालित जहाज़ों की भाँति नहीं थे। ये एक प्रकार की बड़ी-बड़ी लकड़ी की नौकाएँ थीं। इनके बल पर अतलांतक समुद्र को पार करने का प्रयत्न सचमुच साहस का ही काम था।

तीसरे ही दिन 'पिंटा' जहाज़ की पतवार टूट गई। यह असन्तुष्ट नाविकों की करतूत का ही परिणाम था। यहीं से कोलम्बस को अनुभव होने लगा कि बलपूर्वक भरती किये गए असंतुष्ट नाविकों को ऐसी साहस-यात्रा पर साथ ले जाना भला नहीं हुआ। उसे यह भी डर लगा कि कहीं ये असंतुष्ट नाविक एकाएक विद्रोह न कर बैठें। बड़ी मुश्किल से जैसे-तैसे एक द्वीप के निकट ले जाकर पिंटा की मरम्मत की गई। ६ सितम्बर को तीनों जहाज़ फिर आगे रवाना हुए। किन्तु वायु

बिलकुल शान्त हो गई, इसलिए पाल से चलने वाले ये जहाज़ जहाँ-के-तहाँ पड़े रहे।

कोलम्बस को इस समय पुर्तगालियों का भय था। इसका कारण यह था कि पुर्तगाल का राजा कोलम्बस से रुष्ट हो गया था। पहले जब कोलम्बस ने उससे सहायता माँगी थी, तो उसने इन्कार कर दिया था; किन्तु जब रानी इसाबेला इस यात्रा के लिये कोलम्बस को सहायता देने को तैयार हो गई, तो पुर्तगाल-नरेश ने चाहा कि कोलम्बस पुर्तगाल की ओर से इस यात्रा पर जाय। किन्तु एक बार इसाबेला का आश्रय ले लेने के बाद पुर्तगाल-नरेश के आश्रय में जाना कोलम्बस ने उचित नहीं समझा। इस पर पुर्तगाल के राजा ने अपने जहाज़ों को यह आदेश दिया कि यदि वे कोलम्बस के जहाज़ों को कहीं देखें, तो कोलम्बस को गिरफ्तार कर लें या उसके जहाज़ों को डुबा दें। पुर्तगालियों की जलशक्ति पर्याप्त थी। इस समय शान्त वायु के कारण कोलम्बस के जहाज जहाँ पड़े थे, वहाँ पुर्तगालियों का भय भी बहुत अधिक था। परन्तु ६ सितम्बर को कोलम्बस के सौभाग्य से प्रातःकाल से ही अच्छी तेज़ हवा चल पड़ी और देखते-देखते द्वीप दूर आँखों से ओझल हो गए।

जब स्थल के ये अन्तिम चिन्ह भी क्षितिज के पार विलीन हो गये, तो नाविकों का धैर्य छूट गया। उनमें से अनेक नाविकों ने समुद्र में भयंकर यात्राएँ की थीं; अनेक बार तूफानों का सामना किया था, किन्तु उनमें उन्होंने कभी साहस न खोया था। इस समय वे नाविक भी फूट-फूट कर रो पड़े। कोलम्बस उन्हें तरह-तरह की मधुर बातें कहकर धैर्य बंधाने की चेष्टा करने लगा। उसने समुद्र के पार धन-धान्य से भरे नगरों में पहुँचने की आशा दिलाई और नाविकों को वचन दिया कि वह वहाँ पहुँचकर उन्हें मालामाल कर देगा।

कोलम्बस को ख्याल आया कि सम्भव है कि तूफान में पड़कर

उनके जहाज एक दूसरे से अलग हो जायँ। उसने 'पिंटा' और 'नीना' के कप्तानों को आदेश दिया कि अलग-अलग हो जाने की दशा में भी वे १५०० मील तक ठीक पश्चिम की ओर चलते चले जाय। उसे पक्का विश्वास था कि १५०० मील दूर जाकर उसे भारत की भूमि के दर्शन होने ही चाहिये।

कोलम्बस ने सोचा कि ज्यों-ज्यों जहाज आगे और आगे बढ़ते जायगे, त्यों-त्यों नाविकों के हृदय में भय और घबराहट बढ़ती जायगी। इसलिए उसने एक चाल चली। वह यात्रा के दो विवरण रखने लगा। एक विवरण तो जहाज पर सार्वजनिक स्थान में टांग दिया जाता था, जहां उसे हर कोई देख सकता था। इस विवरण में यह बताया गया होता था कि जहाज किस दिशा में, कितनी दूर तक आ चुका है। सार्वजनिक रूप से टांगे गये विवरण में कोलम्बस प्रतिदिन कई मील कम करके लिखता था। दूसरा विवरण वह अपने निजी उपयोग के लिए तैयार करता था, जिसमें यात्रा की दूरी सही-सही लिखी जाती थी। इससे नाविकों को यह अनुभव नहीं होता था कि वे बहुत दूर आ पहुंचे हैं।

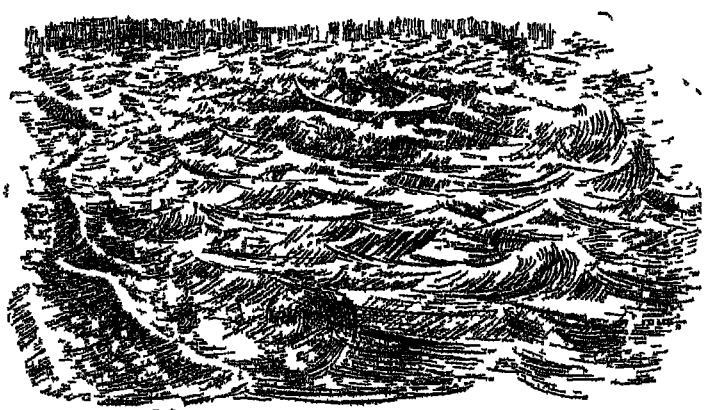

जब वे ३०० मील के लगभग समुद्र में निकल गए, तब उन्होंने समुद्र की लहरों पर तैरता हुआ किसी बड़े जहाज़ का एक टूटा हुआ मस्तूल देखा। अब वे समुद्र के उस प्रदेश में प्रविष्ट हो रहे थे, जिसमें इससे पूर्व मनुष्यों का आवागमन नहीं हुआ था। इस समय इस टूटे हुए जहाज़ के मस्तूल के दर्शन को नाविकों ने बहुत बुरा अपशकुन माना। उन्होंने समझा कि यह इस बात की चेतावनी है कि उनका अपना जहाज़ भी टूट-फूटकर रहेगा।

१३ सितम्बर के दिन पहले-पहल कोलम्बस का ध्यान इस बात की ओर गया कि दिग्दर्शक यन्त्र की सूई भी अपनी दिशा से विचलित हो गई है। यह बिलकुल नई और अनहोनी-सी बात थी। उसने इस बात की चर्चा नाविकों से नहीं की, क्योंकि वह जानता था कि इससे वे और भी आतंकित हो उठेंगे। परन्तु बात देर तक छिपी नहीं रही। कुछ ही समय बाद अन्य नाविकों का ध्यान भी दिग्दर्शक यन्त्र की सूई के विचलन की ओर गया। उनके भय की सीमा न रही। उन्हें लगा कि जैसे इन अनजाने समुद्रों में प्रकृति के नियम भी बदल गए हैं और ये प्रदेश न जाने किन विचित्र नियमों के अधीन हैं। तभी तो यहाँ आकर दिग्दर्शक-यन्त्र की सूई भी अपना अद्भुत गुण खो बैठी है। दिग्दर्शक यन्त्र के अभाव में वे अनन्त अपार समुद्र में अपना मार्ग कैसे खोज पायेंगे? कोलम्बस ने उनका भय दूर करने के लिये कई बातें कहीं। उसने कहा कि दिग्दर्शक की सूई ध्रुवतारे की ओर नहीं रहती, अपितु पृथ्वी के एक अदृश्य ध्रुव की ओर रहती है। नाविकों को उसके खगोल ज्ञान पर विश्वास था, इसलिए उन्होंने उसके इस समाधान को स्वीकार कर लिया। उनका भय बहुत कुछ कम हो गया।

चलते-चलते उनके जहाज़ व्यापारिक हवाओं की धारा में आ पड़े। ये हवाएँ उष्ण कटिबन्धों में नियमित रूप से पूर्व से पश्चिम की ओर बहा करती हैं। समुद्र शान्त था और इन हवाओं के कारण उनके जहाज़

निरुपद्रव तीव्र गति से आगे और आगे बढ़ने लगे। यहाँ तक कि उन्हें कई दिन तक अपना पाल हिलाने तक की आवश्यकता भी न हुई। ऋतु अत्यन्त मनोहर थी और उस स्थिर समुद्र पर मन्थर पवन की सहायता से की गई यह यात्रा अत्यन्त आनन्ददायक थी।

धीरे-धीरे समुद्र में पश्चिम की ओर से बह-बहकर आती हुई झाड़ियां तथा अन्य हरियाली दिखाई पड़ने लगी। इनमें से कुछ वनस्पतियां ऐसी थीं, जो पहाड़ों पर या नदियों में उगा करती हैं। उनके हरेपन को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता था, जैसे वे हाल ही में स्थल पर से उखड़ कर आ रही हैं। एक झाड़ी पर उन्हें एक ज़िन्दा केंकड़ा दिखाई पड़ा। इस प्रकार के केंकड़े गहरे समुद्र में नहीं रहते। उन्हें एक सफ़ेद पक्षी भी दिखाई पड़ा। यह पक्षी समुद्र में नहीं सो सकता। स्थल की नदियों में पाई जाने वाली कुछ मछलियां भी इन जहाजों के पास दिखाई पड़ने लगीं। इससे नाविकों को आशा बँधी कि वे स्थल के आस-पास आ पहुँचे हैं।

ज्यों-ज्यों वे आगे बढ़ने लगे, त्यों-त्यों नाविकों में नई आशा का संचार होने लगा। पश्चिम की ओर से उड़कर आते हुए अनेक पक्षी दिखाई पड़े। उत्तर की ओर कुछ ऐसी बदली-सी छाई हुई थी, जैसी स्थल भाग पर छाई रहती है। सूर्यास्त के समय उन्हें वे बादल दूरस्थ द्वीपों जैसे दिखाई पड़ने लगे। प्रत्येक नाविक सब से पहले स्थल-भाग को देखने और उसकी घोषणा के लिए अधीर था, क्योंकि स्पेन के राजा और रानी ने यह वचन दिया था कि जो भी कोई व्यक्ति इस यात्रा में सब से पहले स्थल भाग को देखेगा, उसे ३० स्वर्ण मुद्राओं की पेंशन दी जायगी।

कोलम्बस बीच-बीच में ४०० गज लम्बी डोरी से टकोर देकर समुद्र की गहराई नापने की कोशिश करता था, किन्तु वह डोर तली तक पहुँचती ही न थी। पिंज़ोन बन्धु तथा अन्य नाविक कोलम्बस से बार-

बार अनुरोध करते थे कि वह जहाजों का रुख मोड़ दे और उस दिशा में चले, जिस ओर स्थल के ये चिन्ह दिखाई पड़ रहे थे। परन्तु कोलम्बस ने उनकी बात न मानी। वह ठीक पश्चिम दिशा की ओर ही चलता रहा। वह पहले भारत पहुँचना चाहता था। यदि मार्ग में कोई और द्वीप पड़ते हों, तो उन्हें लौटते हुए देखा जा सकता था।

यद्यपि सार्वजनिक विवरण में प्रतिदिन यात्रा की दूरी काफी कम करके लिखदी जाती थी, फिर भी नाविकों में बैचेनी बढ़ने लगी। यह यात्रा कहीं समाप्त होती ही दिखाई न पड़ती थी। स्थल के जो चिन्ह दिखाई पड़ने शुरू हुए थे, वे एक-एक करके पीछे छूटते गये। फिर वही नीचे अनन्त अपार समुद्र और ऊपर अनन्त अपार आकाश दिखाई पड़ने लगा। चारों ओर अन्य कोई दर्शनीय वस्तु न थी।

वे अब तक बहुत दूर निकल आए थे। इस समय वे जहाँ थे, वहाँ तक भी उन्हें किसी प्रकार की सहायता नहीं पहुँच सकती थी; किन्तु कोलम्बस के आदेश पर अभी भी वे आगे और आगे पश्चिम की ओर बढ़ते चले जा रहे थे। उन्हें लगता था कि वे सुनिश्चित रूप से मृत्यु के मुख में जा रहे हैं। वह मन्थर वायु, जो उन्हें अत्यन्त शान्त भाव से अतलांतक पार लिए जा रही थी और जो परमात्मा का वरदानस्वरूप ही थी, उनके लिए भय और चिन्ता का कारण बन गई। उन्हें डर लगने लगा कि सम्भवतः इन समुद्रों में वायु सदा पूर्व से पश्चिम की ओर ही बहा करती है; और यह यदि सत्य हो, तो वे फिर कभी स्पेन लौटने की कल्पना भी नहीं कर सकते। सौभाग्य से उन्हीं दिनों दो एक बार पश्चिम की ओर से भी हवा चल पड़ी, जिससे उनका यह भय कुछ कम हुआ। और भी कई आशाजनक लक्षण दिखाई पड़ने शुरू हुए। प्रातःकाल के समय कई छोटी-छोटी चिड़ियाँ, जैसी बागों में रहा करती हैं, उड़ती हुई आतीं और मधुर स्वर में गाया करतीं। ये चिड़ियाँ बहुत छोटी-छोटी थीं और दूर तक उड़ पाने में समर्थ न थीं। उनके गीत से भी यह बात

स्पष्ट थी कि वे उड़ान के कारण थकी हुई नहीं होती थीं। इससे नाविकों को आशा होती थी कि अब स्थल आसपास ही कहीं होना चाहिए।

अगले दिन वायु शान्त हो गई। जहाँ तक भी दृष्टि जाती थी, वहाँ तक सारा समुद्र हरी-हरी वनस्पतियों से भरा हुआ दिखाई पड़ता था, मानो पानी में डूबा हुआ कोई घास का मैदान हो। ऐसा दृश्य तब उपस्थित होता है, जब समुद्र की तली में चलने वाली प्रचण्ड धाराओं के वेग के कारण समुद्र की तली में उगने वाले पौधे उखड़कर पानी के ऊपर तैर आते हैं। इन वनस्पतियों को देखकर नाविकों को भय हुआ कि इस स्थान पर समुद्र बहुत उथला होगा; और उनके जहाज या तो चट्टानों से टकराकर टूट जायेंगे या रेती पर चढ़ जायेंगे, जहाँ से उन्हें हिला पाना ससम्भव होगा। यहाँ न तो उन्हें किसी प्रकार की सहायता प्राप्त हो सकती थी, क्योंकि कोई भी जहाज इतनी दूर तक समुद्र में आता ही नहीं था और न वे आस-पास किसी द्वीप पर जाकर ही अपने प्राण बचा सकते थे। परन्तु उनका यह भय निराधार था, क्योंकि कोलम्बस ने जब डोरी से टकोर दी, तो ४०० गज तक भी उसे समुद्र की तली नहीं मिली।

तीन दिन तक दक्षिण और पश्चिम की ओर से वायु चलती रही। समुद्र ऐसा शान्त था कि वह दर्पण की भांति समतल और चिकना दिखाई पड़ता था। दक्षिण और पश्चिम की ओर से आने वाली वायु इतनी मन्द थी कि उससे समुद्र में लहरें तक नहीं उठती थीं। इससे नाविकों को फिर यह घबराहट हुई कि इन समुद्रों में तेज़ हवा केवल पूर्व से ही चलती है। अन्य दिशाओं की हवाएं इतनी हल्की और परस्पर विरोधी होती हैं कि वे कभी जहाजों को पूर्व की ओर नहीं ले जा सकतीं। इसलिए या तो इन विरोधी हवाओं के कारण उनका जहाज कभी भी किसी किनारे पहुँच ही न पाएगा और यदि किसी द्वीप पर पहुँच भी गया, तो

ने देश कभी न लौट पायेंगे।

कोलम्बस ने उन्हें समझाने की बहुत कोशिश की, किन्तु कोई लाभ न हुआ। उसी समय सौभाग्य से समुद्र में एक जोरदार उभार आया। उस समय हवा बिलकुल नहीं चल रही थी। इस प्रकार का उभार समुद्र में कभी-कभी कहीं बहुत दूर चल रही वायु के कारण भी आया करता है। इससे नाविकों का यह भय जाता रहा कि उनके जहाज शान्त समुद्र को पार करके आगे नहीं जा सकेंगे।

फिर दिन बीतने लगे। नाविकों की उद्विग्नता फिर बढ़ने लगी। कोलम्बस की स्थिति दिनोंदिन संकटापन्न होने लगी। नाविक लोग आपस में कानाफूसी करने लगे। वे दो-दो, तीन-तीन के गिरोह बनाकर जहाज के एकान्त कोनों में जाकर योजनाएँ रचते। धीरे-धीरे वे लोग खुले आम बड़बड़ाने लगे और कोलम्बस को धमकियाँ देने लगे। उनकी दृष्टि में कोलम्बस एक दुस्साहसी, अदूरदर्शी, महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति था, जो जैसे भी हो नाम पैदा करना चाहता था और उसके लिये उन सब को मृत्यु के मुख में धकेल रहा था। "आखिर यह यात्रा कहीं खत्म भी होगी ?" वे पूछते, "या यह यात्रा तब तक जारी रहेगी, जब तक कि उनके जहाज टूट-फूटकर समुद्र में न समा जायेंगे ?"

आखिर नाविक लोग खुले विद्रोह की तैयारी करने लगे। कुछ ने तो यहाँ तक सुझाव रखा कि कोलम्बस को उठाकर समुद्र में फेंक दिया जाय और यह घोषणा कर दी जाय कि यह रात के समय तारों का निरीक्षण करते-करते फिसलकर समुद्र में गिर पड़ा है।

कोलम्बस को भी इन सब चर्चाओं का पता चलता रहता था। किन्तु वह ऊपर से अपनी मुद्रा शान्त और गम्भीर बनाए रखता। कुछ लोगों को वह मीठी बातों से वश में करने का प्रयत्न करता, कुछ लोगों का आदर करके वह उनमें आत्मगौरव का भाव जागृत करता, और कुछ लोगों को कठोर दंड देने की धमकी देता। कोलम्बस के इन प्रयत्नों का फल क्या होता यह कह पाना कठिन है, किन्तु तभी एकाएक स्थल के

निकट पहुँच जाने की आशा से नाविकों का व्यवहार एकदम बदल गया। २५ सितम्बर को मार्टिन अलोंजो पिन्जोन अपने जहाज के अग्र भाग पर चढ़कर चिल्लाया—"स्थल, स्थल ! श्रीमान्, पुरस्कार पर मेरा अधिकार है।"

सचमुच दक्षिण-पश्चिम की ओर स्थल-सा दिखाई पड़ रहा था। कोलम्बस घुटनों के बल झुका और उसने परमात्मा को धन्यवाद दिया। नाविक भी खुशी से पागल होकर गीत गाने लगे। जहाजों ने अपना रुख मोड़ा और दक्षिण-पश्चिम की ओर बढ़े। सारी रात वे उसी दशा में चलते रहे, किन्तु जब प्रातःकाल हुआ, तो उनकी सारी आशाएँ स्वप्न की भाँति विलीन हो गईं। जिसे कल संध्या के प्रकाश में उन्होंने स्थल समझा था, वह वस्तुतः एक बादल था, जो रात्रि में लुप्त हो गया था।

फिर कई दिनों तक इसी प्रकार कभी आशा और कभी बड़बड़ाहट में यात्रा जारी रही। स्थल के अनेक चिन्ह इतने अधिक दिखाई पड़ने लगे कि नाविक आशा से अधीर से हो उठे। पेंशन पाने के लिये उत्सुक होकर प्रत्येक नाविक जरा सा आभास होते ही "स्थल-स्थल" चिल्ला उठता था। अन्त में कोलम्बस को यह घोषणा करनी पड़ी कि "यदि कोई नाविक स्थल दिखाई पड़ने की सूचना देगा और उसके तीन दिन बाद तक स्थल दिखाई न पड़ेगा, तो भविष्य के लिये उसका पेंशन का अधिकार समाप्त हो जायगा।"

७ अक्टूबर तक वे १५०० मील की दूरी पार कर चुके थे। कोलम्बस को आशा थी कि यहां कहीं भारत महाद्वीप होना चाहिये। इस जगह दक्षिण-पश्चिम की ओर छोटी-छोटी चिड़ियों के विशाल दल उड़ रहे थे, जिससे ऐसा संकेत मिलता था कि उस दिशा में कहीं उन चिड़ियों का भोजन एवं विश्राम पाने का स्थान होना चाहिये। पिन्जोन बन्धुओं के आग्रह पर ७ अक्टूबर को कोलम्बस ने अपनी यात्रा की दिशा

दक्षिण-पश्चिम की ओर मोड़ दी। ज्यों-ज्यों वे आगे बढ़ने लगे, त्यों-त्यों स्थल के चिह्न अधिकाधिक दिखाई पड़ने लगे। चिड़ियाँ जहाज़ों के पास आकर मंडराती हुई गाने लगीं। तट से ताज़ी उखड़कर आई हुई हरियाली समुद्र की लहरों पर तैरती दिखाई पड़ने लगी। इस दिशा में भी वे तीन दिन तक चलते रहे। अब तीसरे दिन शाम को नाविकों ने देखा कि सूर्य नित्य की भाँति समुद्र के जल में ही अस्त हो रहा है, तो वे बहुत विक्षुब्ध हो उठे और उन्होंने शोर मचाना शुरू किया कि इस यात्रा को अभी समाप्त किया जाय। पहले तो कोलम्बस ने उन्हें मीठी बातों और भाँति-भाँति के आश्वासनों द्वारा शान्त करना चाहा किन्तु जब उसने देखा कि इससे उग्रता बढ़ती जाती है, तो वह कठोर होगया। उसने कहा—"यह अभियान राजा और रानी के आदेश पर प्रारम्भ किया गया है। मेरा दृढ़ संकल्प है कि चाहे जो हो, मुझे अपने लक्ष्य पर पहुँचना ही है। तुम्हारी सारी बड़बड़ाहट व्यर्थ है। तुम्हें मेरा आदेश मानना ही होगा।"

इस प्रकार अब कोलम्बस और उसके नाविक खुले तौर पर एक-दूसरे के विरोध में आ खड़े हुए थे और सम्भवतः कोलम्बस की स्थिति बहुत बिगड़ जाती, परन्तु सौभाग्य से अगले दिन ही स्थल के ऐसे चिह्न दिखाई पड़ने लगे, जिससे सन्देह की कोई गुंजाइश बाकी न रही। समुद्र तट की चट्टानों के पास रहने वाली जाति की हरी मछलियाँ जहाज़ों के आसपास आकर तैरने लगीं। एक कंटीली बेरी की एक झाड़ी भी तैरती दिखाई पड़ी, जिस पर बेर भी लगे हुए थे। उन्होंने एक सरकंडा, एक छोटा-सा तख्ता और एक डंडा-सा जिस पर चाकू से कुछ खुदाई की गई थी, बहता हुआ देखा। इन वस्तुओं को उन्होंने समुद्र से निकाल भी लिया। इसके बाद सारी बड़बड़ाहट समाप्त हो गई और लोग दिन भर स्थल को खोजने के लिए दृष्टि लगाए रहने लगे।

शाम के समय नित्य के नियम के अनुसार नाविकों ने अपनी सायं-

कालीन प्रार्थना की। उसके पश्चात् कोलम्बस ने उनके सामने एक भाषण दिया। उसने परमात्मा का धन्यवाद किया, जिसने इतनी शान्त और अनुकूल वायु द्वारा उनकी यात्रा में सहायता की थी। उसने कहा : "मुझे विश्वास है कि हम आज रात ही स्थल भाग तक पहुँच जाएँगे।" उसने नाविकों को स्थल की खोज के लिए सतर्क दृष्टि लगाए रखने का आदेश दिया। उसने कहा कि जो व्यक्ति सब से पहले स्थल को देखेगा, उसे राजा की ओर से मिलने वाली पेंशन के अतिरिक्त एक मखमली कोट दिया जाएगा।

सारे दिन हवा खूब अच्छी चलती रही थी। सूर्यास्त के समय भी वे पश्चिम की ओर तेज़ी से बढ़े जा रहे थे। उनके जहाज़ समुद्र की लहरों को चीरते हुए आगे बढ़ रहे थे। 'पिंटा' सबसे आगे था, क्योंकि उसके पाल सब से अच्छे थे। नाविकों में नया जीवन-सा भर उठा था। आशा और अधीरता के कारण सारी रात एक भी नाविक की आँख नहीं लगी। शाम को जब अन्धेरा हो गया, तब कोलम्बस अपने जहाज़ के सब से ऊपरी भाग में जाकर बैठ गया और दूर-दूर तक निरीक्षण करने लगा। यद्यपि ऊपर से तो उसने अपनी आकृति पर गम्भीरता, दृढ़ता और आत्मविश्वास का आवरण डाला हुआ था, किन्तु उसका मन अत्यन्त अशान्त और दुश्चिन्ताग्रस्त था। इस समय वह अन्धकार में बैठा हुआ दूर-दूर तक अपनी आकुल दृष्टि दौड़ाने लगा, जिससे कहीं तो स्थल का कोई धुंधला चिह्न दिखाई पड़े।

१० बजे होंगे। एकाएक उसे लगा कि उसे दूर पर कहीं एक टिम-टिमाता-सा प्रकाश दिखाई पड़ा है। किन्तु उसे यह आशंका हुई कि कहीं ऐसा न हो कि उसे अपनी आशा की अधीरता के कारण ही यों ही प्रकाश का भ्रम हुआ हो। इसलिए उसने एक और नाविक को अपने पास बुलाया और उससे पूछा कि क्या उसे भी वह प्रकाश दिखाई पड़ रहा है। नाविक ने उसकी बात का समर्थन किया। यह प्रकाश कोलम्बस

की कल्पना नहीं, अपितु वास्तविक सत्य था।

किन्तु कोलम्बस को उसके बाद भी सन्देह बना रहा। उसने एक और नाविक को बुलाकर उससे वही प्रश्न पूछा। किन्तु जब तक यह दूसरा नाविक ऊँचाई पर पहुँचा, तब तक वह प्रकाश लुप्त हो चुका था। सब ने यही समझा कि उन्हें प्रकाश का भ्रम हुआ था। बाद में भी उन्हें एक-दो बार इस प्रकाश की झलक दिखाई पड़ी। यह प्रकाश ऐसा प्रतीत होता था, जैसे कोई व्यक्ति मशाल लिए इधर-उधर आ जा रहा हो। समुद्र की लहरों के कारण यह प्रकाश कभी दीखने लगता था और फिर छिप जाता था। नाविकों ने इस प्रकाश को बिलकुल महत्व न दिया, परन्तु कोलम्बस को विश्वास हो गया कि यह प्रकाश अवश्य ही स्थल भाग पर से आ रहा है। न केवल स्थल भाग निकट ही है, अपितु वहाँ पर मनुष्य भी निवास करते हैं।

रात के दो बजे तक वे आगे बढ़ते चले गए। उसी समय 'पिंटा' पर से एक तोप छूटी, जो इस बात का संकेत थी कि स्थल भाग साफ़ दिखाई पड़ने लगा है। यह स्थल भाग पहले-पहल रोद्रीगुए बर्मेजो नामक नाविक को दिखाई पड़ा था; किन्तु तीस स्वर्ण मुद्राओं की पेंशन कोलम्बस को ही दी गई, क्योंकि रात में उसी ने सब से पहले प्रकाश देखा था, जो इस स्थल भाग का पक्का संकेत था।

इस समय स्थल भूमि साफ़ दिखाई पड़ने लगी थी। वह लगभग चार मील दूर थी। जहाज़ों के पाल उतार लिए गए और सब लोग अधीरता से प्रातःकाल होने की प्रतीक्षा करने लगे। इस समय कोलम्बस के मन में तरह-तरह के विचार उठ रहे थे। एक ओर उसे अपनी सफलता पर अपार हर्ष हो रहा था और दूसरी ओर वह सोच रहा था कि ये नए प्रदेश न जाने कैसे होंगे? इनके निवासी भी, पता नहीं, सभ्य हैं या असभ्य? वह सारी रात इन्हीं विचित्र कल्पनाओं में मग्न रहा। किन्तु

यह भूमि भारतवर्ष की नहीं थी, जहाँ कोलम्बस पहुँचना चाहता था, अपितु अमेरिका की भूमि थी।

प्रातःकाल होने पर उन्होंने देखा कि जिस प्रदेश के निकट वे आ पहुँचे हैं, वह खूब हरा-भरा है। सारा समुद्र तट विपुल वन-सम्पत्ति से भरा हुआ था। जंगलों में से बाहर की ओर आते हुए कुछ निवासी भी दिखाई पड़े। कोलम्बस और उसके नाविक छोटी नौकाओं पर बैठकर किनारे पहुँचे। वहाँ कोलम्बस ने घुटनों के बल झुककर पृथ्वी को चूमा। परमात्मा को अनेक धन्यवाद दिए। उसके बाद कोलम्बस ने अपनी तलवार निकाली; स्पेन का राजकीय झंडा फहराया और स्पेन के राजा के नाम पर इन द्वीपों पर अपना अधिकार होने की घोषणा कर दी।

इन द्वीपों के निवासी बहुत सरल-स्वभाव और भले थे। वे अशिक्षित और असभ्य थे। उन्होंने स्पेनवासियों को उनके गोरे रंग, स्वच्छ वस्त्रों और चमकीले शस्त्रों के कारण अलौकिक प्राणी समझा। उनके साथ उन्होंने बड़ा अच्छा व्यवहार किया। कई महीने तक कोलम्बस और उसके साथी इन द्वीपों में रहकर यहाँ के निवासियों से व्यापार करते रहे। वे उन्हें शीशे की गोलियाँ, बटन, चम्मचें इत्यादि वस्तुएँ देकर उनसे सोना, हीरे इत्यादि लेते थे। उन्होंने बहुत-से द्वीपों की खोज की। उन्होंने कई छोटी-छोटी बस्तियाँ बसाईं। उसके बाद अपने इस नवीन अनुसन्धान की सूचना स्पेन में राजा और रानी को देने के लिए कोलम्बस ४ जनवरी १४९३ को वापस यात्रा पर रवाना हुआ। इस बार यात्रा में केवल दो जहाज 'सांटा मेरिया' और 'पिंटा' थे। 'नीना' जहाज उन नाविकों के उपयोग के लिए छोड़ दिया गया था, जो इस नए प्रदेश में शासन सम्हालने के लिए पीछे रह रहे थे।

शुरू-शुरू में कई दिन तक व्यापारिक हवाओं के कारण उसके जहाज आगे न बढ़ सके। कभी पश्चिम की ओर से हवा चलती थी, तो वे आगे बढ़ पाते थे; किन्तु फिर मौसम शान्त हो जाता था और उनकी प्रगति

रुक जाती थी। कभी पूर्व की ओर से वायु चलने लगी थी, जहाज़ों को थोड़ा-बहुत पीछे भी लौट आना पड़ता था। १२ फरवरी तक वे इतनी दूर निकल आए थे कि उन्हें यह आशा होने लगी थी कि अब वे कुछ ही दिन में यूरोप की भूमि के दर्शन करेंगे। १२ फरवरी को एकाएक तेज़ हवा चलने लगी। शाम के समय उत्तर-पूर्व की ओर बिजली की चमक दिखाई पड़ने लगी। इससे कोलम्बस ने अनुमान किया कि ज़ोरदार तूफ़ान आने वाला है।

यह तूफान कुछ ही समय पश्चात् अपनी भयंकर प्रचंडता के साथ आ पहुँचा। उनके छोटे-छोटे जहाज़ अतलांतक महासमुद्र के इन भीषण तूफानों का मुकाबला कर पाने में समर्थ नहीं थे। सारी रात नाविक पाल उतारकर जहाज़ों में सिमटे पड़े रहे। आँधी और वर्षा प्रलय मचाती रहीं। सवेरे के समय आँधी और वर्षा का वेग धीमा पड़ गया। नाविकों ने जहाज़ों को आगे बढ़ाने की कोशिश की। पर कुछ ही देर बाद आँधी दक्षिण की ओर से फिर चौगुने वेग से उठ खड़ी हुई। बादल घिर आये। समुद्र की लहरें पहाड़ियों की तरह ऊँची-ऊँची उठकर आने लगीं मानो जहाजों को निगल लेना चाहती हों। तूफान का ज़ोर बढ़ने लगा। प्रतिपल यह आशंका होने लगी कि अब उनके जहाज़ बिना डूबे न बचेंगे। लहरें जहाज़ों पर आ आकर इतने ज़ोर-ज़ोर से थपेड़े मारने लगीं कि नाविक त्रस्त हो उठे। हवा के तेज़ झोंकों के कारण 'पिंटा' 'सांटा मेरिया' से दूर और दूर हटता जाने लगा। कोलम्बस ने मार्टिन अलोंजो पिंजोन को संकेतों द्वारा कहा कि वह अपने जहाज़ को 'सांटा मेरिया' के पास ही रखे। पर उन तूफ़ानी लहरों में जहाज़ को क़ाबू रख पाना सम्भव नहीं हुआ। कुछ देर बाद 'पिंटा' आंखों से ओझल हो गया।

तूफान सारी रात इसी तरह घुमड़ता रहा। अपने आपको बिलकुल असमर्थ और असहाय अनुभव करके कोलम्बस और उसके साथियों ने

देवी-देवताओं की मनौतियां मनानी शुरू कीं। उन्होंने एक सारी रात जागकर गिरजाघर में प्रार्थना करने की मनौती मनाई। उन्होंने यह भी निश्चय किया कि यदि वे किसी प्रकार इस भयंकर तूफान में से बचकर सकुशल तट पर पहुँच सके, तो वे नंगे पाँव जलूस बनाकर कुमारी मेरी के गिरजाघर में जायँगे और अपनी प्राणरक्षा के लिये धन्यवाद अर्पित करेंगे।

परन्तु तूफान ने उनकी इन सब मनौतियों की बिलकुल परवाह नहीं की। उसका वेग बढ़ता ही गया। उस समय कोलम्बस के मन में एक विचार आया, जो उसके लिये मृत्यु से भी अधिक भयानक था। यदि कहीं इस तूफान में उसका जहाज डूब गया, तो उसकी इस विलक्षण यात्रा और नई दुनियाँ की खोज की कहानी भी उसके साथ ही समुद्र में डूब जायगी। कोई न जान पाएगा कि उसने अपनी सूझ-बूझ और साहस से एक चमत्कार कर दिखाया था। इतिहास में उसका नाम भी अन्धे, अर्धविक्षिप्त दुःसाहसी व्यक्तियों में लिखा जायगा। यह वह कैसे सह सकता था?

उसने अपनी यात्रा का हाल और नये द्वीपों की खोज का वर्णन विस्तार से एक कागज पर लिखा। उस कागज को एक लिफाफे में बन्द करके उस लिफाफे पर यह आश्वासन लिखा कि जो कोई इस पत्र को बिना खोले स्पेन के राजा को दे देगा, उसे राजा से १००० स्वर्ण मुद्राएं पुरस्कार में प्राप्त होंगी। इस लिफाफे को उसने मोम में लपेटकर एक बोतल में बन्द कर दिया। इस बोतल को मुहरबन्द करके समुद्र में फेंक दिया गया। अब यदि जहाज डूब भी गया, तो भी उनके वीरतापूर्ण अनुसन्धान की कथा बची रहेगी और एक न एक दिन संसार उसे जान ही जायगा। इसी प्रकार की एक और बोतल बन्द करके जहाज के सबसे ऊपरी भाग में रख दी गई, जिससे यदि जहाज डूबने लगे, तो वह बोतल

भी तैर जाय। दो बोतलों में से एक न एक तो समुद्र तट जा ही पहुँचेगी।

यद्यपि यह सूझ प्रशंसनीय थी, परन्तु इसकी आवश्यकता न पड़ी। सारे दिन जहाजों को झकझोरने के बाद शाम के समय तूफान का वेग घट गया। पश्चिम की ओर खुला आकाश दिखाई पड़ने लगा। अगले दिन प्रातःकाल १५ फरवरी को उन्हें स्थल भाग दिखाई पडा। यह अजोर्स द्वीपसमूह का सबसे दक्षिण की ओर का द्वीप था।

एक बार फिर अपनी पुरानी दुनियां में वापस पहुँचने पर नाविकों के हर्ष का वारापार न रहा। इतनी प्रसन्नता उन्हें नई दुनियाँ में पहुँच कर पहली बार स्थल को देखने पर भी न हुई थी। परन्तु इस पुरानी दुनियाँ में आने पर उनका स्वागत उससे बिलकुल भिन्न हुआ, जैसा नई दुनियाँ में पहुँचने पर हुआ था। यह द्वीप पुर्तगाल के राजा के आधीन था। यहाँ के गवर्नर ने कोलम्बस के आधे नाविकों को गिरफ्तार कर लिया। वह कोलम्बस को गिरफ्तार करना चाहता था, परन्तु कोलम्बस उसके हाथ नहीं आया। तीन दिन बाद गिरफ्तार नाविक छोड़ दिए गए और कोलम्बस स्पेन की ओर आगे बढ़ा।

२ मार्च को फिर एक जोरदार तूफान आया। यह पहले तूफानों से भी अधिक भयंकर था। हवा इतनी तेज थी कि उनके जहाजों के पाल फट गए। ऐसा लगने लगा कि शायद भाग्य अब भी उन्हें तट पर पहुँचने देने को तैयार नहीं था। उन्होंने घबराकर फिर मनौतियाँ मनानी शुरू कीं। परन्तु तूफान का ज़ोर कम न हुआ। दो दिन तक वे आँधी, वर्षा और समुद्र की लहरों का उत्पात सहन करते रहे। हवा 'सांय-सांय' करती, चीखती सी आती थी, रह-रहकर बिजली कौंधती थी, जिससे सारा आकाश गड़गड़ा उठता था। लगातार मूसलाधार वर्षा होने लगी। समुद्र की लहरें पर्वतों की तरह ऊँची-ऊँची होकर कुछ गर्जना करने लगीं।

उसी समय उन्हें समुद्र का तट दिखाई पड़ा। यह और भी भयावह

स्थिति थी। किनारे की ओर बढ़ने में इस बात का संकट था कि समुद्री लहरें उनके जहाज को किसी चट्टान पर ले जा टकरायें, जिससे वह तत्काल चूर-चूर हो जाए। अपनी सफल यात्रा में अन्त के इतना निकट पहुँचकर मर जाने की कल्पना भी अत्यन्त दुःखद थी। वे जहाज को समुद्र में ही रखने की कोशिश करते रहे। अगले दिन सवेरे तक भी तूफान चलता रहा। पर प्रकाश में देखकर यह पता चल गया कि यह प्रदेश पुर्तगाल की सीमा में है। पुर्तगालियों का खतरा होने पर भी अन्य कोई उपाय नहीं था। उन्होंने सावधानी से तट तक पहुँचने की कोशिश की। पर तूफानी लहरों के होते हुए यह काम सरल नहीं था।

रौस्टैलो नगर के निवासियों ने इस जहाज को तूफान में फंसे हुए देख लिया था और वे व्याकुलता से इसके तट तक आ पहुँचने की प्रतीक्षा कर रहे थे। शाम को तीन बजे के लगभग कोलम्बस का 'सांटा मेरिया' जहाज किनारे से आकर लगा। इन नाविकों को बधाई देने के लिये सारा रौस्टैलो नगर उमड़ पड़ा।

नगर के अत्यन्त वृद्ध नागरिकों ने भी बताया कि अपने जीवन में उन्होंने इस ऋतु में ऐसा भयंकर तूफान कभी नहीं देखा। यदि इसका चौथाई भयंकर भी तूफान कोलम्बस की पहली, पश्चिम की ओर की गई यात्रा में आया होता, तो उसके नाविकों ने विद्रोह कर दिया होता और कोलम्बस को उठाकर समुद्र में फेंक दिया होता।

दक्षिणी ध्रुव की ओर ८

उत्तरी ध्रुव का अनुसन्धान १९०९ में एडमिरल पैरी ने पूर्ण कर लिया था। वह अनेक वर्षों से उत्तरी ध्रुव तक पहुँचने के लिए प्रयत्नशील था। अन्त में उसके दृढ़ संकल्प की विजय हुई। साहसी अभियात्रियों के लिए अब कोई नया लक्ष्य ढूँढना आवश्यक हो गया था। रोल्ड एमंडसन भी ऐसे ही साहसी यात्रियों में से एक था। उसने भी उत्तरी ध्रुव को विजय करने के लिए यात्रा की थी; और उसकी सूझ-बूझ तथा साहस को देखते हुए यह बिलकुल सम्भव था कि वह उत्तरी ध्रुव पर पहुँच जाता, किन्तु उत्तरी ध्रुव को विजय करने का श्रेय एडमिरल पैरी के भाग्य में था। अब एमंडसन ने दक्षिणी ध्रुव को विजय करने का निश्चय किया। उन्हीं दिनों इंग्लैंड की ओर से भी एक यात्री-दल कैप्टेन स्काट की अध्यक्षता में दक्षिणी ध्रुव को विजय करने के लिए चला।

एमंडसन और स्काट दोनों को ही ध्रुव-प्रदेशों की यात्रा का अच्छा अनुभव था। दोनों इससे पूर्व कई बार दुर्गम बर्फीले प्रदेशों की यात्रा कर चुके थे। दोनों को ही यह विश्वास था कि वे सबसे पहले दक्षिणी ध्रुव पर पहुँचने में सफल होंगे। १९११ के प्रारम्भ में ये दोनों अलग-अलग देशों से दक्षिणी ध्रुव की ओर रवाना हुए।

दक्षिणी ध्रुव का प्रदेश उत्तरी ध्रुव से बहुत भिन्न है। सील और ह्वेल मछलियों का शिकार करने वाले नाविकों ने बताया था कि दक्षिण

की ओर समुद्र में जाने पर एकाएक सामने पानी पर तैरती हुई बर्फ की एक अत्यन्त ऊँची और मीलों तक फैली हुई दीवार सामने आ खड़ी होती है, जिसको पार कर पाना या जिस पर चढ़ पाना अत्यन्त कठिन है। वस्तुतः यह बर्फ की दीवार केवल दीवार नहीं थी, अपितु उसके आगे सैंकड़ों मील तक फैला हुआ बर्फीला प्रदेश था, जो समुद्र में आकर इस तरह एकाएक खड़ी दीवार के रूप में समाप्त होता था। यह बर्फीला प्रदेश कहीं समतल था और कहीं इसमें ऊँचे-ऊँचे पहाड थे। स्वयं दक्षिणी ध्रुव ११००० फीट की ऊँचाई पर विद्यमान है। इस बर्फीले प्रदेश में ही आग उगलने वाला ज्वालामुखी पर्वत माउंट ऐरेबस भी है।

कैप्टेन स्काट ने अपने 'टैरानोवा' नामक जहाज में यात्रा प्रारम्भ की। धीरे-धीरे चलता हुआ इनका जहाज बर्फ को काटता हुआ उसी विशाल बर्फ की दीवार के पास तक आ पहुँचा। कैप्टेन स्काट का स्वागत प्रारम्भ में ही एक भयंकर बर्फीले तूफान ने किया। सब ओर खूब अच्छी ज़ोर की बर्फ पड़ी। प्रत्येक वस्तु के ऊपर बर्फ की सफेद फुहियाँ जम गईं। स्काट ने माउंट ऐरेबस की उपत्यका में अपना प्रधान शिविर बनाने का विचार किया। 'टैरानोवा' जहाज एक छोटी-सी खाड़ी में जाकर खड़ा हुआ और उससे सामान उतारा जाने लगा। यात्रा का सामान इतना अधिक था कि उसे जहाज से उतारने में ही कई दिन लग गए। स्काट ने अत्यन्त सावधानी से इस यात्रा की तैयारियाँ की थीं, इसलिए उसने इस बात का पूरा यत्न किया था कि कोई भी ऐसी आवश्यक सामग्री छूट न जाय, जिसकी उन्हें यात्रा में आवश्यकता पड़े और वह समय पर प्राप्त न हो सके।

स्काट इससे पहले भी एक बार १९०१ में दक्षिणी ध्रुव की खोज में आ चुका था, किन्तु उस समय उसे सफलता प्राप्त न हुई थी। उस समय के अनुभव से लाभ उठाकर उसने मोटर से चलने वाली स्लैज गाड़ियाँ, घोड़े और कुत्ते तो अपने साथ लिए ही थे, साथ ही वह बड़ी मात्रा में

इमारती लकड़ी भी अपने साथ ले गया था, जिससे समुद्र के किनारे एक बड़ी-सी झोंपड़ी तैयार की जा सके, जिसमें यात्री लोग सुख से विश्राम कर सकें। कई महीनों तक जहाज पर रहने के बाद तट पर उतरकर क्या मनुष्य, क्या घोड़े और कुत्ते, सभी ने बहुत आनन्द अनुभव किया।

तट पर उतरने के बाद सब लोग झोंपड़ी के निर्माण में जुट गए और बहुत शीघ्र ही वह विशाल झोंपड़ी तैयार भी हो गई। सामान उसके अन्दर रख दिया गया और झोंपड़ी के बाहर घोड़ों के लिए एक कामचलाऊ अस्तबल बना दिया गया। वह मार्च का महीना था। अभी यात्रा प्रारम्भ नहीं की जा सकती थी, क्योंकि कुछ ही दिन पश्चात ध्रुव प्रदेश की लम्बी रात्रि प्रारम्भ हो जानी थी; और उस रात्रि में भयंकर शीत तथा अन्धकार के कारण यात्रा कर पाना असम्भव ही होता। इसलिए उन्हें ध्रुव प्रदेश की रात्रि बीत जाने तक यहीं प्रतीक्षा करनी थी। उनके पास खाद्य-सामग्री पर्याप्त थी, इसलिए चिन्ता का कोई कारण न था।

यात्रा भले ही देर में प्रारम्भ होनी हो, किन्तु उससे पहले करने को बहुत-सा काम बाकी था। यात्रा प्रारम्भ करने से पहले उन्हें काफी दूर तक आगे जाकर छोटे-छोटे शिविर बीच-बीच में बना देने थे, जिनमें पर्याप्त भोजन-सामग्री और कपड़े रखे हों; जिससे यात्रा समाप्त करके लौटते हुए ये उनके लिए उपयोगी सिद्ध हो सकें। इसके अतिरिक्त उन्हें अपने कुत्तों और घोड़ों को बर्फ़ पर चलने और स्लैज गाड़ियाँ खींचने का अभ्यास भी करवाना था। इन बर्फीले प्रदेशों में सामान ढोने के लिए स्लैज गाड़ी के अतिरिक्त अन्य कोई सामान उपयोगी सिद्ध नहीं होता। जब तक अभ्यास न हो, तब तक घोड़ों और कुत्तों के लिए बर्फ़ पर स्लैज गाड़ी खींच पाना कठिन ही है। अप्रैल तक यह अभ्यास तथा रास्ते पर शिविर बनाने का काम चलता रहा। उसके बाद रात्रि प्रारम्भ हो गई और दूर-दूर तक यात्रा कर पाना सम्भव न रहा। सर्दी के कारण समुद्र

जम गया। तेज आँधियाँ चलने लगीं और बर्फ पड़ने लगी। चार महीने तक रात्रि का अन्धकार रहा। वह समय इन्होंने मछलियों का शिकार करते और थोडी-थोडी दूर तक जाकर अनेक प्रकार के वैज्ञानिक अनुसन्धान करते हुए बिताया। अगस्त के प्रारम्भ तक ध्रुव-प्रदेश की लम्बी रात्रि समाप्त हो गई और सब ओर खूब अच्छा तेज प्रकाश हो गया।

१ नवम्बर को स्काट ने अपनी लम्बी यात्रा प्रारम्भ की। तैयारियाँ सब पूरी हो चुकी थी। पहले-पहल मोटर से चलने वाली स्लैज गाड़ियों का प्रयोग किया गया। ये स्लैज गाड़ियाँ कुछ दूर तक तो ठीक चलीं, किन्तु शीघ्र ही उन्होंने जवाब दे दिया और उन्हे छोडकर घोड़ों और कुत्तों को ही स्लैज खीचने के काम मे लगाना पडा। ये घोड़े और कुत्ते स्काट ने विशेष रूप से साइबेरिया से मंगाए थे, जिससे ये ध्रुव-प्रदेश की शीतल ऋतु को सरलता से सह सकें।

ज्यों-ज्यों वे आगे बढने लगे, त्यों-त्यों उनकी कठिनाइयां भी बढने लगी। पांच मील तक बर्फ के मैदान पर चलते रहने के पश्चात् वे बर्फ की विशाल दीवार पास आ पहुंचे। यहां पहुँचकर मौसम

एकदम बदल गया। बर्फीली आंधी चलने लगी। भूमि पर ताज़ी नरम बर्फ पड़ने लगी, जिसके कारण यात्री और घोड़े घुटनों तक बर्फ में धँस जाते थे। उनकी चाल बहुत धीमी हो गई। इस तरह की विषम परिस्थिति कई दिन तक बनी रही। उनके घोड़े एक-एक करके मरने लगे। जब ज़ोर की वर्षा या बर्फ पड़ने लगती थी तो यात्री लोग तो तम्बुओं में घुस जाते थे और कुत्ते बर्फ को खोदकर उसमें गड्ढा-सा बनाकर बैठ जाते थे, जिससे आंधी से उनका बचाव हो जाता था; परन्तु घोड़ों के लिये आंधी से बचाव की कोई व्यवस्था नहीं थी। कुछ ही दिनों में सब घोड़े मर गये। अब इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय न था कि सारा सामान यात्रियों और कुत्तों को ही मिलकर ढोना पड़े। स्काट ने अधिक भरोसा मोटर से चलने वाली स्लैजों और घोड़ों पर रखा था। उसने बहुत थोड़े कुत्ते अपने साथ लिये थे। इस प्रकार प्रारम्भ में ही स्काट के मुख्य साधन उससे छिन गये।

बर्फ पर यात्रा करना भी सरल काम नहीं था। यदि यह समतल भूमि होती, तो भी बर्फ पर यात्रा बहुत सरल न होती; किन्तु यह पर्वतीय प्रदेश था, जहां बर्फ अत्यन्त खतरनाक थी। अनेक बार ऐसा होता था कि ऊपर तो बर्फ की हल्की नरम तह बिछी होती थी और उसके नीचे बहुत गहरा गड्ढा या खाई होती थी। इस खाई का पता तभी चलता था, जब कोई व्यक्ति उसमें गिर पड़ता था। ऐसी दशा में उस व्यक्ति को खींचकर निकालना भी बड़े परिश्रम और कठिनाई का कार्य होता था। बर्फ़ पर सूर्य की तेज किरणें पड़ती थीं, जिनसे आँखें चुंधिया जाती थीं। बर्फ में बनी हुई दरारें भी तब तक नहीं दीख पाती थीं, जब तक कि आदमी उनके किनारे पहुँचकर फिसल ही न जाय।

इस प्रकार अत्यन्त कठिन परिस्थितियों में यात्रा करते हुए एक मास पश्चात् वे बीयर्डमोर नामक हिमनद तक पहुँच गये। यहां से

ऊपर की ओर चढ़ाई प्रारम्भ हुई। क्योंकि कुत्ते बहुत उपयोगी सिद्ध नहीं हो रहे थे, इसलिये दो व्यक्ति कुत्तों को लेकर वापस लौट गये। अब स्लैज खींचने का सारा काम यात्रियों को स्वयं ही करना पड़ा। एक ओर तो चढ़ाई के कारण स्लज खींचना और अधिक कठिन हो गया था और दूसरी ओर नरम बर्फ में पांव धँस जाने के कारण भी उन्हें चलने में कठिनाई होती थी। किन्तु ज्यों-ज्यों वे ऊपर की ओर चढ़ते जाते थे, त्यों-त्यों ठंड बढ़ती जाती थी और बर्फ अधिकाधिक कठोर होती जाती थी। कठोर बर्फ पर स्लैज खींचना अपेक्षाकृत अधिक सरल था। दिसम्बर मास के अन्त तक वे इस हिमनद के बिलकुल ऊपरी भाग तक पहुँच गये थे, जो लगभग १०,००० फीट की ऊंचाई पर था। यहां से स्काट ने शेष साथियों को भी लौटा दिया। उसने आगे बढ़ने के लिये केवल पांच साथी चुने। ये थे ईवान्स, विल्सन, ओट्स, बावर्स तथा स्काट स्वयं। उन्होंने अपने स्लैज गाड़ियों पर खाने-पीने की पर्याप्त सामग्री रख ली, जिससे उनका एक मास तक निर्वाह हो सके। यहां से ध्रुव लगभग १४० मील दूर रह गया था।

स्काट को यह मालूम था कि नार्वे का प्रसिद्ध यात्री एमंडसन भी दक्षिणी ध्रुव की विजय के लिए चल चुका है, इसलिए वह किसी प्रकार जल्दी से जल्दी दक्षिणी ध्रुव पर पहुँच जाना चाहता था, जिससे दक्षिणी ध्रुव की विजय का श्रेय एमंडसन को न मिलकर उसके अपने देश को प्राप्त हो सके। किन्तु मौसम ने उनका साथ न दिया। यद्यपि अब चढ़ाई समाप्त हो गई थी और १०,००० फीट की ऊँचाई पर एक ऊँचे पठार पर उनका मार्ग समतल भूमि पर ही था, किन्तु एकाएक फिर तेज़ आँधी चलनी प्रारम्भ हो गई। विवश होकर उन्हें एक दिन और एक रात अपने छोटे से तम्बू में सिमटकर पड़े रहना पड़ा। उस भयंकर बर्फीली आँधी में आगे बढ़ना सुनिश्चित रूप से मृत्यु के मुख में घुसना ही होता।

चौबीस घंटे तक चलते रहने के पश्चात् बर्फ़ का तूफान थम गया, किन्तु ताज़ा पड़ी हुई बर्फ़ पर स्वयं चलना और सामान से लदी हुई अपनी स्लेजों को खींचना बहुत ही कठिन कार्य था। सारे दिन में कठोर परिश्रम करके भी वे दस मील से अधिक नहीं चल पाते थे। इस समय भी ध्रुव से वे लगभग ८० मील दूर थे।

अब रास्ता कुछ ढलान की ओर चला। बर्फ़ भी कठोर हो चली। किन्तु बहुत ऊबड़-खाबड़ होने के कारण उस पर स्लैज गाड़ियों को खींचने की कठिनाई ज्यों की त्यों बनी रही। स्काट को एक उपाय यह सूझा कि वे थोड़ी-थोड़ी भोजन-सामग्री बीच-बीच में छोड़ते चलें, जिससे लौटते समय वह उनके काम आ सके। जहाँ यह भोजन-सामग्री रखी जाती थी, उसके पास ही वे बर्फ़ की एक ऊँची मीनार सी बना देते थे, जिससे लौटते हुए उस सामग्री को खोज पाने में कठिनाई न हो। इस प्रकार बीच-बीच में सामग्री छोड़ते जाने का एक बड़ा लाभ यह हुआ कि उनका बोझ कम हो गया और वे तेज़ी से आगे बढ़ने में समर्थ हुए। किन्तु उसके बाद भी उनकी चाल प्रतिदिन दस मील से अधिक नहीं हो सकी।

१६ जनवरी १९१२ को, जब अभी ध्रुव से काफी दूर थे, उन्हें दूर पर एक ऊँचा बर्फ़ का टीला-सा दिखाई दिया। जब उन्होंने उसकी ओर ध्यान से देखा तो उस बर्फ़ के टीले पर फहराता हुआ एक काला झंडा दिखाई पड़ा। यह झंडा एमंडसन ने गाड़ा था, जो स्काट से लगभग एक मास पूर्व दक्षिणी ध्रुव पर पहुँच गया था और वहाँ से वापस लौट चुका था। आगे बढ़ते हुए स्काट और उसके साथियों ने बर्फ़ पर यात्रियों और कुत्तों के पैरों के निशान बने देखे, जो एक मास बाद अब तक भी ज्यों के त्यों बने हुए थे। ये पदचिन्ह ध्रुव की ओर जाते हुए और ध्रुव से लौटते हुए दोनों बार के थे। इसमें किसी को सन्देह न रहा कि नार्वे का यात्री-दल उनसे पहले ध्रुव तक पहुँच चुका है। उनका सारा

उत्साह समाप्त हो गया। किन्तु इतनी दूर तक आकर बिना ध्रुव तक पहुँचे भी वे लौट नहीं सकते थे। १७ जनवरी १९१२ को ये पाँचों यात्री ठीक ध्रुव पर पहुँच गये। वहाँ एमंडसन का झंडा लहरा रहा था। उसके पास ही एक शिविर के कुछ बाकी बचे हुए चिह्न थे, जिन से ज्ञात होता था कि एमंडसन के यात्री-दल ने यहाँ रात भी बिताई थी। ध्रुव पर पहुँचकर इन लोगों ने भी बर्फ़ का एक ऊँचा टीला बनाया और उस पर अपना इंग्लैंड का झंडा फहरा दिया।

उसके बाद ये तुरन्त लौट पड़े। इनकी खाद्य-सामग्री बहुत कम रह गई थी। इन्हें आशा नहीं थी कि इतनी थोड़ी खाद्य-सामग्री के सहारे वे वापस अपने शिविर तक लौट भी पाएंगे। इसलिए वहां रुकने का तो प्रश्न ही नहीं था।

स्काट की यह वापसी की यात्रा ध्रुव की ओर आते समय की यात्रा से भी कहीं अधिक भयंकर रही। मौसम पहले से भी अधिक भीषण हो उठा। तेज़ आँधी बिना रुके चलने लगी। किन्तु इस बात को ये यात्री भी खूब अनुभव कर रहे थे कि इस समय रुकना उनके लिए किसी दशा में श्रेयस्कर न होगा। वे आगे और आगे बढ़ते ही रहे। रुकने की दशा में उन्हें शायद भूखे रहकर प्राण त्यागने पड़ते; किन्तु आगे बढ़ने पर उन्हें निश्चय था कि उनकी पीछे छोड़ी हुई खाद्य-सामग्री उन्हें प्राप्त होती जाएगी, जिससे उन्हें नया बल प्राप्त होगा। चलते-चलते वे उस १०,००० फीट ऊँचे बर्फीले पठार के अन्तिम छोर तक आ पहुँचे।

यद्यपि आगे का मार्ग भी बहुत भला नहीं था, किन्तु पीछे छूटे हुए मार्ग की अपेक्षा सरल था। अब उन्हें हिमनद पर होते हुए नीचे की ओर उतरना था। इस मार्ग पर बर्फ़ भी जमकर खूब कठोर और शीशे की भाँति चिकनी हो गई थी। यहाँ स्लैज खींचने में पहले जैसी कठिनाई नहीं थी। अद्भुत साहस और धैर्य से आगे बढ़ते हुए वे अपनी उन बर्फ़ की बनाई हुई मीनारों के निकट तक आ पहुँचे, जहाँ उन्होंने खाद्य-सामग्री

रखी हुई थी। कुछ और आगे बढ़ने पर रास्ते का रूप फिर बदल गया। कहीं बर्फ़ कठोर होती थी और उसके कुछ ही आगे फिर नरम पोली बर्फ़ आ जाती थी। इससे धोखा खाकर यात्री तेजी से चलता-चलता एकाएक लड़खड़ाकर गिर पड़ता था। इस हिमनद के निचले भाग में पहुँचकर इवान्स थकान और भूख से दुर्बल होकर गिर पड़ा। उसकी तुरन्त वहीं मृत्यु हो गई।

शेष चार यात्रियों के लिए यह अत्यन्त दुःखद आघात था, किन्तु इस पर किसी का कोई वश न था। उन्होंने इवान्स को वहीं छोड़ा और आगे बढ़े।

जो सामग्री उन्हें बीच-बीच में मिलती रही, वह बहुत-थोड़ी थी। उससे उन्हें सहायता तो मिली, किन्तु उससे उनकी भूख भी नहीं मिट पाती थी। भूखे पेट इतना बीहड़ रास्ता तय कर पाना बहुत ही कठिन था। फिर भी वे जैसे-तैसे आगे बढ़े जा रहे थे। हिमनद वाला मार्ग भी समाप्त हो गया; और अब केवल वह मार्ग शेष बचा, जो बर्फ़ की विशाल दीवार वाले भाग पर होकर जाता था। भोजन के अभाव में उनकी दुर्बलता दिनों-दिन बढ़ती जाती थी। दुर्बलता के साथ अब बीमारियाँ भी होने लगीं। ओट्स इनमें सब से अधिक बीमार और रोगी हो गया था। एक दिन शाम के समय ज़ोर का तूफान आया। सब लोग अपने तम्बू के अन्दर सिमटकर बैठ रहे। तम्बू से बाहर बर्फ़ पड़ रही थी और हवा सर्राटे भरती हुई चल रही थी। ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे आज प्रलय होकर ही रहेगी।

एकाएक ओट्स उठकर खड़ा हो गया और बोला : "मैं ज़रा बाहर जा रहा हूँ। शायद मुझे लौटने में कुछ देर लगे।" सब जानते थे कि इस समय ऐसे रोगी और दुर्बल मनुष्य के बाहर तूफान में जाने का अर्थ सुनिश्चित मृत्यु है। पर किसी ने उसे रोका नहीं। ओट्स बाहर चला गया और फिर कभी लौटकर न आया।

ओट्स अपनी रुग्ण और दुर्बल दशा को भली-भाँति अनुभव करता था। उसने सोचा था कि यदि मैं इनके साथ रहूँगा, तो मुझे छोड़कर ये आगे न जा सकेंगे। मेरी मृत्यु तो होगी ही, साथ ही इन सबके बचने का भी अवसर न रहेगा। इसलिये उसने अपने इन अन्य साथियों से अलग हो जाना ही श्रेयस्कर समझा। उसे मृत जान लेने के पश्चात् उसके ये साथी तेजी से चलकर सुरक्षित अपना झोंपड़ी तक पहुँच सकेंगे, जहां खाने-पीने की सामग्री, पहनने के लिये कपड़े और जलाने के लिये ईंधन विद्यमान है।

किन्तु ओट्स के आत्म-बलिदान से भी वह प्रयोजन पूरा न हुआ, जो उसने सोचा था। शेष तीनों साथी पहले की अपेक्षा कुछ तेजी से अवश्य बढ़े, किन्तु मौसम और अधिक बिगड़ता गया। एक और भयंकर बर्फीला अन्धड़ आ गया, जिसके कारण उन्हें फिर तम्बू गाड़कर बैठ रहना पड़ा। थकान, भूख और सर्दी के कारण उनकी शक्ति पल-पल क्षीण हुई जा रही थी, किन्तु आगे बढ़ने का कोई उपाय न था। अब उनकी झोंपड़ी भी कुछ ही मील दूर रह गई थी। यदि ऋतु अच्छी होती, तो अधिक सम्भव यही था कि ये लोग अपनी झोंपड़ी तक पहुँच जाते। किन्तु ये आगे नहीं बढ़ सके।

तूफान अविराम चलता रहा। इन सब साथियों को अनुभव होने लगा था कि अब वे किसी तरह बच नहीं सकेंगे। स्काट मरते दम तक अपनी डायरी लिखता रहा। २९ मार्च को उसने अपनी डायरी में लिखा—"लगता है अब अन्त दूर नहीं है। भगवान् के नाम पर हमारे बाल-बच्चों का ध्यान रखना।"

इसके आगे डायरी खाली पड़ी रही। डायरी लिखने वाले हाथ में से चेतना समाप्त हो गई। एक-एक करके बावर्स, विल्सन और स्काट तीनों मर गए।

बहुत समय तक उनके सम्बन्ध में कोई समाचार न मिल सका। जब

अगले वर्ष एक और यात्री-दल उनकी खोज में गया, तब उसे वह छोटा-सा तम्बू दिखाई पड़ा, जिसमें स्काट और उसके साथी दबे हुए थे। वह तम्बू इस समय अब तक बर्फ से लगभग ढक सा गया था। वहीं उन्होंने स्काट तथा उसके साथियों को दफ़ना दिया और उसके ऊपर एक छोटा सा स्मारक बना दिया।

यद्यपि स्काट असफल रहा, फिर भी साहस और सहिष्णुता की दृष्टि से उसका नाम सब से साहसी यात्रियों में लिया जाता है।

यदि स्काट ने भी एमंडसन की भाँति दूरदर्शिता से काम लिया होता तो सम्भवतः दक्षिणी ध्रुव की विजय का श्रेय एमंडसन को न मिलता, स्काट को ही मिलता। एमंडसन भी दक्षिणी ध्रुव की विजय के लिये लगभग उसी समय रवाना हुआ था, जब स्काट हुआ था। एमंडसन ने अपने से पूर्व किये गये ध्रुव-सम्बन्धी अभियानों के अनुभव से पूरा लाभ उठाया था। यहाँ तक कि उसने अपनी यात्रा के लिये उस प्रसिद्ध ऐतिहासिक जहाज 'फ्राम' को ही चुना था, जिसे उत्तरी-ध्रुव के प्रसिद्ध यात्री नैनसन ने ध्रुव यात्रा के लिये विशेष रूप से तैयार कराया था। इस जहाज की बाहरी तहें दो फीट मोटी लोहे की चादरों से बनी थीं, जिससे बर्फ में फंस जाने पर वह बर्फ़ के दबाव का मुकाबला कर सके। इससे पूर्व एक जहाज ध्रुव यात्रा में बर्फ में फंस गया था, और जब सर्दियों में बर्फ का दबाव बढ़ा, तो वह उसमें पिस कर टूट फूट गया। इस 'फ्राम' जहाज की पेंदी भी नुकीली न होकर चपटी थी। इसलिये जब समुद्र का पानी जम कर बर्फ बन जाता था, तो यह जहाज बर्फ के ऊपर इस तरह टिक जाता था मानो भूमि पर रखा हुआ हो।

एमंडसन ने अपने अनुभव से इस यात्रा के लिए उपयोगी सामग्री के चुनाव में कोई कसर न छोड़ी थी। उसने अपने साथ इतनी सामग्री ली कि यदि उसे किसी कारण कठिनाई में भी फंसना पड़ जाय, तो वह सामग्री दो वर्ष तक उस दल के सब यात्रियों के लिए पर्याप्त हो। इसके

अतिरिक्त स्काट की भांति एमंडसन ने यात्रा के लिए मोटरों से चलने वाली स्लैज गाड़ियों और घोड़ों का भरोसा नहीं रखा। वह अनुभव से जानता था कि ध्रुव के बर्फ़ीले प्रदेश में कुत्ते सबसे अधिक उपयोगी सिद्ध होते हैं। इसलिए उसने अपने साथ लगभग १०० एस्किमो कुत्ते लिए थे। इसके अतिरिक्त स्वयं एमंडसन और उसके साथी बर्फ़ पर स्की लकड़ियों के सहारे फिसलना भी बहुत अच्छी तरह जानते थे। इस विद्या में वे विशेष रूप से प्रवीण थे।

१४ जनवरी १९११ के दिन एमंडसन ने अपनी समुद्र-यात्रा समाप्त की और 'फ्राम' ने बर्फ़ की दीवार के पास बनी हुई एक खाड़ी में लंगर डाल दिया। बर्फ़ पर कुछ दूर आगे बढ़कर उन्होंने अपना आधार-शिविर बनाया। एमंडसन को मालूम था कि अप्रैल में ध्रुव-प्रदेश की लम्बी रात प्रारम्भ हो जाएगी; इसलिए उसने रात प्रारम्भ होने से पूर्व ही आवश्यक तैयारियाँ कर डालना उचित समझा, जिससे रात्रि समाप्त होते ही तुरन्त यात्रा प्रारम्भ की जा सके। उन्होंने काफी दूर आगे बढ़कर एक और दूसरा शिविर तैयार कर किया। इस शिविर में भी खाद्य-सामग्री तथा अन्य आवश्यक वस्तुएँ इतनी पर्याप्त मात्रा में पहुँचा दी गयीं कि आवश्यकता पड़ने पर उनसे काफी समय तक कई व्यक्तियों का निर्वाह हो सके। इसी प्रकार उन्होंने लगभग ८० मील और आगे बढ़कर एक तीसरा पड़ाव बनाया। उस पड़ाव में भी उन्होंने बहुत बड़ी मात्रा में खाद्य-सामग्री जमा कर दी। इन तीन पड़ावों को बनाने और उनमें पर्याप्त सामग्री पहुँचाने में इन लोगों को काफ़ी दिन लग गए। अब शीत-ऋतु आरम्भ होने वाली थी, इसलिए ये सब लोग लौटकर अपने आधार-शिविर में वापस आ गए।

अप्रैल में ध्रुव-प्रदेश की लम्बी रात प्रारम्भ हो गई। इन दिनों दूर तक आना-जाना तो सरल न था, फिर भी आस-पास के प्रदेश में चक्कर काटकर ये यात्री सील मछलियों का शिकार करते रहे, जिससे उनके

कुत्तों को खाने के लिए पर्याप्त मांस मिलता रह सके। कुछ ही दिनों में उन्होंने लगभग ६० टन मछलियों का मांस इकट्ठा कर लिया, जो उनकी आवश्यकता से भी कहीं अधिक था।

सब तैयारियाँ पूरी हो जाने पर वे अधीरता से उस दिन की प्रतीक्षा करने लगे, जिस दिन सूर्य उदय हो और वे अपनी यात्रा प्रारम्भ करें। आखिर वह दिन २४ अगस्त को आ पहुँचा। सूर्योदय हो जाने पर भी ऋतु यात्रा के लिए पूरी तरह अनुकूल न थी। बर्फ़ रह-रहकर पड़ने लगती थी और कभी-कभी तेज आँधी चलनी शुरू हो जाती थी। ८ सितम्बर को एमंडसन ने अपनी दक्षिणी-ध्रुव की विजय-यात्रा के लिए प्रस्थान किया। एमंडसन ने अपने दल को दो भागों में बाँट दिया, जिससे दोनों दल अलग-अलग मार्गों से दक्षिणी-ध्रुव तक पहुँचने का यत्न करें।

यद्यपि यात्रा में कठिनाइयाँ बहुत अधिक थीं, मौसम प्रतिकूल और मार्ग अत्यन्त दुर्गम था, किन्तु एमंडसन के साथियों को इन कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने में कोई विशेष असुविधा नहीं हुई। सर्दी से बचाव के लिए उनके पास पर्याप्त कपड़े थे और खाने के लिए पर्याप्त भोजन था। बर्फ से बचने के लिए इन यात्रियों ने एक के ऊपर एक छः-छः जुराबें पहनी हुई थीं। यदि वे ऐसा न करते, तो अधिक सम्भव यही था कि उनके पैर जगह-जगह से बर्फ से गल जाते। कुत्ते स्लैज गाड़ियां खींचने में बहुत सफल रहे। एमंडसन ने बार-बार परीक्षण करके ऐसी स्लैज गाड़ियाँ बनाई थीं, जो मजबूत होने के साथ-साथ बहुत हल्की भी थीं। बर्फ के ऊपर मार्ग बहुत ऊबड़-खाबड़ था, किन्तु अपनी स्की लकड़ियों की सहायता से उस पर चलने में इन नार्वे-निवासी यात्रियों को विशेष असुविधा न हुई। इस प्रकार बर्फ पर चलने के वे भली-भाँति अभ्यस्त थे। यही कारण था कि जहाँ एक ओर स्काट के यात्री दल के सदस्य एक दिन में मुश्किल १०-१२ मील चल पाते थे, वहाँ

एमंडसन के साथी प्रतिदिन २२-२३ मील तक का मार्ग तय कर लेते थे और उन्हें किसी प्रकार की असुविधा अनुभव न होती थी।

क्रमशः इन्होंने बर्फ के फैले हुए पठार को पार कर लिया। उसके बाद इन्हें एक हिमनद के सहारे ऊँची पहाड़ की चढ़ाई पर चढ़ना पड़ा। इस चढ़ाई के मार्ग में बर्फीले प्रदेश में पाई जाने वाली सभी विपत्तियाँ अपने विकरालतम रूप में उपस्थित थीं। न केवल मार्ग ऊबड़-खाबड़ था, अपितु जगह-जगह गहरी खाइयाँ और दरारें थीं, जिनमें एक बार गिर पड़ने पर मनुष्य का पता तक चला पाना सम्भव नहीं था। बहुत बार ये दरारें ऊपर से नरम बर्फ से ढकी होती थीं; इसलिए प्रत्येक नया कदम रखने से पूर्व सामने की बर्फ को जाँच लेना होता था। चढ़ाई पर स्लैज गाड़ियों को खींचना भी कठिन था; इस कारण उनकी चाल धीमी पड़ गई। किन्तु इससे अधिक कुछ न हुआ। वे बिना रुके निरन्तर आगे बढ़ते रहे। चढ़ाई चढ़ते-चढ़ते वे ११,००० फीट की ऊँचाई तक जा पहुँचे। इसके आगे कुछ दूर तक ढलान और फिर समतल मार्ग था। यहाँ पहुँच कर उनकी चाल फिर तेज़ हो गई।

एमंडसन ने इस बात का ध्यान रखा था कि वापसी यात्रा में उन्हें किसी प्रकार की असुविधा न हो। इसलिए थोड़ी-थोड़ी दूर पर ये लोग बर्फ के छः-छः फीट ऊँचे खम्भे बनाते गये थे। दक्षिणी ध्रुव के प्रदेश में सर्दी के कारण बर्फ के ये खम्भे महीनों, यहाँ तक कि वर्षों तक इसी प्रकार बिना पिघले खड़े रह सकते थे। अपनी सारी यात्रा में उन्होंने १५० से अधिक ऐसे खम्भे बनाये। बीच में एक दो स्थानों पर उन्होंने खाद्य सामग्री भी छोड़ दी, जो वापस लौटने के समय उनके काम आये।

एमंडसन को भी यह मालूम था कि एक अंग्रेजी दल दक्षिणी ध्रुव पर विजय प्राप्त करने के लिये आ रहा है। एडमिरल पैरी ने उत्तरी ध्रुव पर पहले विजय प्राप्त करके एमंडसन से उत्तरी ध्रुव की विजय का श्रेय छीन लिया था। कहीं ऐसा न हो कि दक्षिणी ध्रुव पर सब से

पहले पहुँचने का श्रेय भी कोई और ले ले ! इसलिए एमंडसन ने अपनी यात्रा की चाल खूब तेज़ रखी और १४ दिसम्बर १९११ के दिन एमंडसन और उसके साथी दक्षिणी ध्रुव पर जा पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपना नार्वे का झंडा फहरा दिया। दक्षिणी ध्रुव पर एमंडसन का यात्री-दल तीन दिन तक रहा। इसके बाद १७ दिसम्बर को वे वापसी यात्रा पर रवाना हुए। स्काट का यात्री दल १७ जनवरी को दक्षिणी ध्रुव पर पहुँचा था और उसे नार्वे का यही झंडा फहराता हुआ दिखाई पड़ा था।

दक्षिणी ध्रुव की ओर जाते समय की यात्रा की भाँति वापस लौटते समय भी एमंडसन को कोई ऐसी कठिनाई नहीं हुई, जो उसका मार्ग रोक सकती। वैसे तो इस प्रदेश में बर्फीले तूफानों की कठिनाई एमंडसन के यात्री-दल के सम्मुख भी उतनी ही थी, जितनी स्काट के यात्री-दल के सम्मुख थी, परन्तु एमंडसन ने अपनी दूरदर्शिता द्वारा उन कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने के उपाय पहले ही सोच लिए थे। इसीलिए उन्हें कहीं भी न तो भोजन की कमी पड़ी और न कपड़ों की। स्लैज गाड़ियाँ खींचने के लिए उसने जिन कुत्तों पर भरोसा किया था, उनमें से सब अत्यन्त सफल रहे और सकुशल यात्रा करके जीवित वापस लौट आये। इसलिए एमंडसन के साथियों को स्काट के यात्री दल की भाँति कहीं भी अपने हाथों से स्लैज गाड़ियाँ नहीं खींचनी पड़ीं।

एमंडसन ने दक्षिणी ध्रुव पर विजय प्राप्त कर ली, किन्तु उसके हृदय में विद्यमान साहसिक कार्यों की भावना अभी तक भी शान्त नहीं हुई थी। उसने एक बार फिर विमान द्वारा उत्तरी ध्रुव-समुद्र पर उड़ान करने का निश्चय किया। यह यात्रा अपने ढंग की पहली थी। छः सौ मील दूर निकल जाने पर हवाई जहाज़ खराब हो गया और उन्हें बर्फ पर उतरना पड़ा। बड़ी कठिनाई से अत्यन्त घोर परिश्रम के उपरान्त ये यात्री लोग वापस लौट पाने में सफल हुए।

एमंडसन की मृत्यु भी जो एक ऐसे ही साहसपूर्ण अभियान में हुई उसके यश को सौ गुना बढ़ाने वाली है। १९२८ में एक इटालियन विमान-चालक नोबाइल ने १७ यात्रियों के साथ एक हवाई जहाज में बैठ कर उत्तरी ध्रुव के ऊपर उड़ान की। यह हवाई जहाज पुराने ढंग का जैपैलिन ढंग का हवाई जहाज था, जो गुब्बारों में भरी हुई गैस की सहायता से उड़ता था।

यह यात्रा पूर्णतया सफल रहती, परन्तु बीच में एक दुर्घटना हो गई। हवाई जहाज के नीचे यात्रियों के बैठने का जो खटोला लटका हुआ था, वह एकाएक टूट कर नीचे गिर पड़ा और हवाई जहाज का बाकी अंश, जिसमें तीन विमान-चालक भी थे, उड़कर किसी अलग दिशा में चला गया।

यह दुर्घटना बहुत भयंकर थी। संसार के सब देश इन दुर्घटनाग्रस्त यात्रियों की खोज के लिए प्रयत्नशील हो उठे। एमंडसन ऐसे समय शान्त कैसे रह सकता था? वह एक हवाई जहाज में बैठकर इन यात्रियों को खोजने और सहायता पहुँचाने के लिए चला। उसके बाद से आज तक एमंडसन का कुछ पता नहीं चला। जिन यात्रियों को बचाने के लिए वह गया था, उनमें से अधिकांश बचा लिए गए, किन्तु एमंडसन को नहीं बचाया जा सका।

नरभक्षक चीता ९

भारत के उत्तर में हिमालय पर्वत है, जिसकी तराइयों में अत्यन्त घने जंगल फैले हुए हैं। ये जंगल मैदानी प्रदेश से प्रारम्भ होकर पाँच-छः हज़ार फीट की ऊँचाई तक खूब घने हैं। इन जंगलों में बाघ, चीता, भालू इत्यादि अनेक हिंस्र जन्तु पाए जाते हैं। इस प्रदेश में बड़े-बड़े शहर नहीं के बराबर हैं। ऊँची-नीची पहाड़ियों पर जहाँ-तहाँ छोटे-छोटे गाँव बसे होते हैं। ये गाँव भी एक दूसरे से बहुत दूर होते हैं। इनके निवासी अत्यन्त गरीब होने के कारण पक्के मकान नहीं बना पाते। थोड़े बहुत पत्थर इकट्ठे करके उनसे कामचलाऊ झोंपड़े से तैयार कर लेते हैं। उनमें वे स्वयं रहते हैं और अपने पशुओं को बाँधते हैं।

इन प्रदेशों में यों तो जंगली पशुओं का उत्पात सदा ही चलता रहता है; बाघ और चीते जब भी मौका पाते हैं, तभी गाँव के किसी भी पशु को पकड़ लेते हैं और उसे मार कर चट कर जाते हैं। इस प्रकार पशुओं का मारा जाना भी गाँव वालों के लिये काफी कष्टप्रद होता है। गरीब होने के कारण उनके लिए एक गाय, भैंस या बकरी का नुकसान भी कम नहीं होता। किन्तु इससे भी भयंकर विपत्ति तब आ जाती है, जब इन वनों में कोई बाघ या चीता नरभक्षक बन जाता है।

बाघ या चीते स्वभावतः नरभक्षक नहीं होते। यहाँ तक कि मनुष्य को अकेला जंगल में देखकर भी वे साधारणतया उस पर आक्रमण नहीं करते, केवल सुन्दरवन में पाये जाने वाले बंगाली बाघ के सम्बन्ध में यह

कहा जाता है कि वह स्वभाव से ही नरभक्षक होता है और मनुष्य को देखते ही उस पर आक्रमण करता है। परन्तु हिमालय के वनों में या अफ्रीका के जंगलों में पाए जाने वाले बाघ और चीते साधारणतया मनुष्य से दूर ही रहना पसन्द करते हैं। पर कभी-कभी परिस्थितियों से विवश होकर उन्हें नरभक्षक बन जाना पड़ता है और जब कोई बाघ या चीता नरभक्षक बन जाता है, तो फिर वह मनुष्य का ही मांस खाना अधिक पसन्द करता है, क्योंकि मनुष्य को मार पाना अन्य किसी भी जंगली पशु की अपेक्षा कहीं अधिक सरल है।

इन वनों में बीच-बीच में बाघ और चीते नरभक्षक बनते रहते हैं। कई बाघ और चीते तो नरभक्षक बनने के बाद अपनी मृत्यु से पूर्व चार-सौ पाँच सौ आदमियों तक का सफाया कर डालते हैं। इन नरभक्षक हिंस्र पशुओं को जल्दी से जल्दी मार डालना आवश्यक हो जाता है, क्योंकि इनका आतंक आस-पास के सारे प्रदेश पर छा जाता है। लोग एक-एक करके मरते जाते हैं। मृत्यु के भय से लोग घर से बाहर निकलना और खेतों पर काम के लिए जाना बन्द कर देते हैं। इससे सारे काम-काज ठप्प हो जाते हैं। यह स्थिति देर तक नहीं रहने दी जा सकती।

अब से अनेक वर्ष पूर्व गढ़वाल के प्रदेश में एक चीता नरभक्षक हो गया था। उसका उत्पात इतना अधिक था कि कई वर्ष तक यह चीता न केवल सारे भारत में अपितु भारत से बाहर भी समाचार पत्रों की चर्चा का विषय बना रहा। सरकार ने उसे मारने के लिए कई व्यक्तियों को नियुक्त किया। किन्तु बहुत समय तक यह चीता शिकारियों को चकमा देता रहा। सरकारी कागजों में उसका उल्लेख "रुद्रप्रयाग का नरभक्षक चीता" नाम से किया जाता था।

रुद्रप्रयाग, बद्रीनाथ, केदारनाथ के मार्ग पर बसा हुआ एक छोटा सा पहाड़ी कस्बा है। यहाँ अलखनन्दा और मन्दाकिनी नदियों का संगम है। प्रतिवर्ष बद्रीनाथ केदारनाथ की यात्रा पर जाने वाले हजारों यात्री

इस मार्ग से गुजरते हैं। इस नरभक्षक चीते के आतंक के कारण न केवल आस-पास के सैकड़ों गाँवों की जनता त्रस्त थी, अपितु तीर्थयात्रियों पर भी इसका भयानक आतंक छाया हुआ था। लोग रास्तों पर अकेले तो कहना ही क्या, समूह में मिलकर चलते हुए भी डरते रहते थे। संयोगवश इस चीते का पहला शिकार भी एक तीर्थयात्री ही हुआ था।

एक दिन तीर्थयात्रियों की एक टुकड़ी सारे दिन चलकर थकी हुई एक चट्टी पर पहुँची। यहाँ से रुद्रप्रयाग केवल दो-ढाई मील दूर था। यात्रियों की संख्या अधिक थी। चट्टी में स्थान कम था, इसलिए वहाँ के दूकानदार ने कहा, कि आप लोग यहाँ न ठहरें। रुद्रप्रयाग चले जायं। यहाँ आज कल रात को एक चीता आता है। उसके कारण यहां बहुत खतरा है।

यात्री बहुत थके हुए थे। वे आगे जाना नहीं चाहते थे। पर दूकानदार के ज़ोर देने पर जाने को तैयार हो गये। उसी समय एक और पहलवान सा दिखाई पड़ने वाला यात्री वहाँ पहुँचा। वह इन सब यात्रियों की अपेक्षा कहीं अधिक थका हुआ था, क्योंकि वह इनसे कहीं अधिक रास्ता चलकर आ रहा था। जब उसने यात्रियों की टोली को आगे जाने के लिए तैयार देखा, तो उसे बहुत चिन्ता हुई। वह स्वयं थकान के मारे अब एक कदम भी आगे नहीं चलना चाहता था। उसने यात्रियों को सान्त्वना दी की चीता उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। वे व्यर्थ ही इस अन्धेरे के समय घने जंगल में होकर आगे जाने का संकट मोल ले रहे हैं। उसके आश्वासन पर यात्रियों ने वहीं डेरा डाल दिया और आगे बढ़ने का विचार छोड़ दिया।

सब लोग रात को खा-पीकर सो गये। थकान के मारे ऐसी गहरी नींद आई कि किसी को अपना होश न रहा। जब सवेरे उठे तो उन्होंने देखा कि वही पहलवान सा दिखाई पड़ने वाला व्यक्ति वहाँ नहीं है। उसका बिस्तर ज्यों का त्यों बिछा हुआ था। पहले तो लोगों ने सोचा

कि वह नित्यकर्म से निवृत्त होने गया होगा। किन्तु जब वह घंटे भर तक भी न लौटा तो यात्रियों के मन में शंका उत्पन्न हुई। ज़रा देर मे सब ओर यही बात चर्चा का विषय बन गई। दूकानदार ने सुना तो वह भी दौड़ कर आया। जिस चबूतरे पर सब यात्री सोये थे, उसके पास ही रात की ओस से सीली हुई जमीन पर चीते के पैरों के निशान दिखाई पड़ रहे थे। ध्यान से देखने पर उन्हें खून की एक बूँद भी दिखाई पड़ी, जो जम कर सूख ई थी। सारे यात्रियों में एक अजीब घबराहट और सनसनी फैल गई। कुछ और दूर बढ़ने पर चीते के पद-चिन्हों के साथ-साथ खून की और बूंदें पड़ीं हुई दिखाई पड़ी। इसमें सन्देह न रहा कि चीता ही उस यात्री को उठा ले गया था। तुरन्त आस-पास के पहाड़ी लोगों को इकट्ठा करके एक टुकड़ी बनाकर लाश की खोज शुरू की गई। काफी देर तक ढूंढ़ने के बाद सड़क से कोई दो फर्लांग दूर नीचे एक खड्ड में पड़ी हुई उस आदमी की लाश मिल गई। उसका अधिकांश भाग चीते ने खाकर समाप्त कर दिया था।

इस चीते का आतंक धीरे-धीरे बढ़ना शुरू हुआ। यह किसी दिन एक गाँव में शिकार करता, तो उससे अगले दिन १० मील दूर किसी दूसरे गाँव के जाकर किसी स्त्री या बालक को दबोच लेता। जिस गाँव में कोई स्त्री या बालक इसका शिकार बन जाता था, उस गाँव के सब निवासी अत्यन्त सावधान और सतर्क हो जाते थे। किन्तु उनकी यह सावधानी और सतर्कता प्रायः व्यर्थ रहती थी, क्योंकि यह धूर्त चीता एक शिकार करने के बाद फिर तुरन्त उसी गाँव में शिकार नहीं करता था। यह वहाँ से चाहे जिस ओर चल पड़ता। कुछ अनुमान नहीं किया जा सकता था कि वह किस दिशा में जायगा और कितनी दूर जाकर किसी दूसरे गाँव में नया शिकार खोजेगा। इसलिए दूर के गाँवों मे पहुँचने पर इस चीते को प्रायः सदा ही असावधान पुरुष, स्त्रियाँ और

बालक मिल जाते थे, जिनमें से किसी का भी शिकार यह बहुत आसानी से कर लेता था।

निःशस्त्र मनुष्य चीते के सम्मुख अत्यन्त दुर्बल और असमर्थ होता है। न तो उसमें इतना बल होता है कि वह अपनी शक्ति द्वारा चीते का मुकाबला कर सके, न उसमें चीते जैसी फुर्ती ही होती है। तेज़ दौड़कर चीते से बच पाना उसके लिए असम्भव है, क्योंकि चीता बहुत सरलता से ३०-३५ मील प्रति घण्टे की चाल से दौड़ सकता है। अन्य पशुओं की भाँति मनुष्य सींगों अथवा नाखूनों द्वारा भी चीते से अपना बचाव नहीं कर सकता; और न उसकी खाल ही इतनी मोटी होती है कि वह चीते का आघात सहकर भी अक्षत बच सके। संक्षेप में कहा जाय तो अन्य पशुओं की तुलना में मनुष्य चीते के लिए गुलाब-जामुन की तरह नरम और स्वादिष्ट भोजन होता है। इसलिए यह चीता आए दिन नए-नए व्यक्तियों को मारता और हर नए व्यक्ति को मारने के बाद उसका साहस पहले से और अधिक बढ़ जाता।

स्थिति ऐसी हो गई कि आस-पास के सैकड़ों गाँवों में कुहराम-सा मच गया। लोग 'त्राहि-त्राहि' कर उठे। इन सभी गाँवों में चीता किसी न किसी व्यक्ति को मार चुका था। यह निश्चय न होने के कारण कि चीता इस समय कहाँ होगा, सभी गाँवों के निवासी भयभीत रहने लगे। वे रात में अपने घर के दरवाजे अच्छी तरह मजबूती से बन्द करके सोते थे और दिन में भी अकारण बस्ती से बाहर नहीं निकलते थे। उनका ऐसा भयभीत होना उचित भी था, क्योंकि जिस प्रकार यह चीता अपने शिकार को पकड़ लेता था, उससे लोगों पर यह आतंक बैठ गया था कि इस चीते में कोई विलक्षण शक्ति विद्यमान है। खेत पर काम करते हुए या जंगल में पत्ते और लकड़ियां काटने के लिए गए हुए लोगों को तो यह बहुत सरलता से पकड़ ही लेता था, साथ ही घरों के दरवाजे तोड़

कर उनमें सोए हुए लोगों को भी उठा ले जाता था। एक दो बार तो इसने दीवार को खोद कर उसमें छेद बनाकर छेद के रास्ते आदमी को उठा ले जाने का भी प्रयत्न किया।

पहाड़ी लोगों में यह भी अन्ध-विश्वास प्रचलित है कि कई बार कोई दुष्ट योगी भी मनुष्य के माँस का स्वाद लेने के लिए बाघ या चीते का रूप धारण कर लेता है और मनुष्य को मारकर खाने के बाद वह फिर अपने मनुष्य रूप में ही आ जाता है। इसीलिए पहाड़ी लोगों का यह भी विश्वास होता है कि इस प्रकार के नरभक्षक बाघों और चीतों को मार पाना सम्भव नहीं होता। वे तभी मर सकते हैं जब कि उनकी अपनी मृत्यु आ जाय।

समाचारपत्रों में आए दिन चीते द्वारा की जाने वाली हत्याओं के समाचार छपते थे। इसलिए सरकार ने इस चीते को मारने वाले शिकारियों को इनाम देने की घोषणा की। कई शिकारी इस चीते को मारने के लिए पहुँचे, किन्तु वे सभी असफल रहे। उनमें से अधिकांश को शिकार का तो अनुभव था, किन्तु नरभक्षक हिंस्र पशुओं के स्वभाव और उनकी आदतों को जानने का उन्हें अवसर नहीं मिला था। इसलिए वे जब भी किसी चीते की मारी हुई लाश के पास बैठते, तो चीता कभी लौटकर उस लाश पर न आता। सामान्यतया वन के हिंस्र-पशुओं का यह नियम होता है कि जिस लाश को वे अधूरा खाकर छोड़ जाते हैं, उसे खाकर समाप्त कर डालने के लिए वे कुछ समय बाद फिर उसी लाश पर आते हैं। यदि इस बीच में वहाँ पर शिकारियों ने उचित रूप से अपना डेरा जमा लिया हो, तो वे आसानी से ऐसे हिंस्र-पशुओं का शिकार कर लेते हैं। परन्तु इस चीते की यह विचित्र आदत थी कि यह लौटकर वापस लाश पर न आता था।

एक बार दो कुशल शिकारियों ने यह सोचा कि चीता अलखनन्दा नदी के दोनों किनारों पर मनुष्यों को मारता है; इससे यह स्पष्ट है कि

चीता कभी-न-कभी अलखनन्दा को अवश्य पार करता होगा। इस नदी को पार करने के लिए केवल एक ही पुल था। बाकी पुल इतनी दूर थे कि उनके द्वारा नदी पार करना चीते के लिए कठिन ही प्रतीत होता था। चीता दिन के समय पुल को पार नही करता था। इसलिए दोनों शिकारियों ने यह निश्चय किया कि वे रात-रात भर जागकर इस पुल पर पहरा देंगे और ज्योंही चीता पुल पर दिखाई पड़ेगा त्योंही उसे गोली मार देंगे।

योजना बुरी नहीं थी। किन्तु कठिनाई यह थी कि चीता नदी को रोज़ पार नही करता था। दोनों शिकारी धैर्य से पुल के दोनों किनारों पर बनी ड्यौढ़ियों पर बैठकर रात-रात भर प्रतीक्षा करने लगे। रात के समय मनुष्यों का पुल की ओर आना-जाना पहले से ही बन्द था; अब घोषणा करके बिलकुल मना ही कर दिया गया। इस तरह पुल पर बैठते हुए उन्होंने कितनी ही राते बिता दीं। तीन सप्ताह के बाद एक रात को उनमे से एक शिकारी ने पुल पर एक पशु को चलते हुए देखा, जिसे उसने चीता समझा। रात अन्धेरी थी। उसने निशाना साधकर जल्दी मे गोली चला दी। निशाना सही नहीं बैठा। गोली लगते ही वह पशु भागा और उस ड्यौढी के नीचे से होकर गुजरा, जिस पर शिकारी

बैठा था। शिकारी को इसमें सन्देह न रहा कि यह चीता ही था। उसने एक और गोली चलाई, किन्तु यह चीते को छुई तक नहीं। अगले दिन सवेरे नीचे उतरकर शिकारियों ने पुल की पड़ताल की, तो उन्होंने देखा कि पहली गोली से चीते के अगले पंजे का थोड़ा-सा हिस्सा कटकर गिर पड़ा है। जिस ओर से चीता भागा था, उस ओर खून की बूँदों की पंक्ति भी दिखाई पड़ रही थी। खून की बूँदों की इस पंक्ति के सहारे चीते की खोज का प्रयत्न किया गया, किन्तु इसमें सफलता न मिली। चीते का कोई नाम-निशान न मिला।

इस घटना के बाद कुछ समय तक चीते का उत्पात बन्द रहा। सम्भवतः उसे अपने पैर का घाव ठीक होने तक निश्चेष्ट होकर पड़े रहना पड़ा। उसके बाद फिर एक दिन एक गाँव में चीते ने छापा मारा। मकान की निचली मंजिल में एक कमरे में भेड़ें बन्द रहती थीं। इस कमरे में ही एक लड़का भी सोया करता था, जो इन भेड़ों का रखवाला था। कमरे के बीचों-बीच एक ऊँचा चबूतरा था। इस चबूतरे पर लड़का सो जाता था और चारों ओर कमरे में भेड़ें ठसाठस भरी रहती थीं। कमरे का दरवाज़ा अन्दर से एक भारी पत्थर से बन्द हुआ रहता था। उस दिन रात को, लगता है, इस मकान के पास से गुजरते हुए चीते ने कुछ ऐसी गन्ध अनुभव की होगी, जिसके कारण उसे यह प्रेरणा मिली कि वह दरवाज़ा खोलकर अन्दर घुस जाय। उसके हल्का-सा धक्का देते ही दरवाज़ा खुल गया।

जब अगले दिन लोगों ने उस कमरे को देखा तो उसमें भेड़ों का रखवाला नहीं था। भेड़ों के मालिक ने भेड़ों की गिनती की और यह आश्चर्य की बात थी कि दरवाज़ा खुला रहने पर भी सब भेड़ें पूरी थीं। कमरे के बाहर खून की बड़ी-बड़ी बूँदों की कतार दूर तक चली गई थी, जिससे स्पष्ट था कि उस रखवाले बालक को चीता ही उठाकर ले गया था। यह गाँव वालों के लिए कल्पनातीत बात थी कि इतनी भेड़ों के होते

हुए भी चीते ने अपने भोजन के लिए उस रखवाले बालक को ही चुना। किसी भी भेड़ के शरीर पर मामूली खरोंच तक नहीं आई हुई थी।

इस प्रकार लोगों को फिर यह सूचना मिल गई कि वह नरभक्षक चीता मरा नहीं है, अपितु ज्यों का त्यों जीवित है।

उसके बाद उत्तर-प्रदेश की सरकार ने एक कुशल और अनुभवी शिकारी को इस चीते के शिकार के लिए नियुक्त किया। उसे सब प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की गईं। इस शिकारी को पहले भी अनेक नरभक्षक हिंस्र पशुओं के शिकार का अनुभव था। इसने निश्चय किया कि जैसे भी हो, इस चीते को मारकर ही वापस लौटूंगा। इस शिकारी का नाम था जिम कौर्बेट।

जिम कौर्बेट ने इस काम को हाथ में लेते ही सब से पहले चीते के क्षेत्र को सीमित कर देने का प्रयत्न किया। उसने ऐसी व्यवस्था करवा दी, जिससे चीता नदी को पार करके एक किनारे से दूसरे किनारे पर न जा सके। जिस ओर वह है, उसी ओर रहे। जिन पुलों से होकर चीता नदी को पार पर सकता था, उन पर ऐसी व्यवस्था कर दी गई कि वे रात के समय बन्द कर दिए जाया करें। दिन में पुल पर से चीते के गुजरने की सम्भावना नहीं के बराबर थी।

इसके बाद चीते की टोह लेने की कोशिश की गई। कौर्बेट ने यह नियम बना लिया कि उसे जब भी चीते द्वारा किसी व्यक्ति के मारे जाने की ख़बर मिलेगी, वह तुरन्त उस स्थान पर पहुँचने की कोशिश करेगा, चाहे वह जगह कितनी ही दूर क्यों न हो और रास्ता कितना ही भयानक क्यों न हो। चीता अपने पुराने ही ढंग से एक के बाद एक लाश किये जा रहा था। कौर्बेट का काफी समय उसका पीछा करते बीता।

एक दिन कौर्बेट बैठा चाय पी रहा था कि एक गाँव वाले ने आ कर ख़बर दी कि चीते ने अभी-अभी एक स्त्री को मार डाला है। जिस गाँव में चीते ने यह लाश की थी, वह यहाँ से चार मील दूर था।

कौबैंट ने तुरन्त लाश को देखने के लिए चल पड़ने का निश्चय किया। उस समय एक और अंग्रेज़ अफसर कौबैंट के पास आया हुआ था। दोनों साथ मिलकर चल पड़े।

लाश को देखने पर मालूम हुआ कि चीते ने उसका बिलकुल ज़रा सा भाग खाया है। इससे कौबट को आशा बंधी कि चीता लाश को खाने के लिए आज किसी न किसी समय अवश्य दुबारा आयेगा। मचान बाँधने का अवसर नहीं था इसलिए दोनों ने निश्चय किया कि वे थोड़ी दूर एक पेड़ पर छिपकर बैठेंगे। गाँव में जाकर दोनों ने चाय पी और लौट कर उसी पेड़ पर आ जमे। पेड़ के पत्तों की आड़ में उन्होंने अपने आप को अच्छी तरह छिपा लिया था, जिससे वह धूर्त चीता उन्हें देख न सके।

पर जितना उन्होंने समझा था, चीता उससे कहीं अधिक चालाक था। पेड़ पर बैठे उन्हें कई घंटे हो गये, यहां तक कि सूर्य छिप गया, पर चीते का कोई चिन्ह दिखाई नहीं पड़ा। अभी इतना प्रकाश था कि उसमें वे निशाना साध कर गोली चला सकते थे। इसलिए दोनों पेड़ पर बैठे रहे। बैठे-बैठे उनका शरीर थक गया, क्योंकि वे शुरू से ही बिना हिले-डुले बैठे हुए थे। हिलने-डुलने से यह आशंका थी कि यदि चीता आसपास कहीं हुआ तो, वह उनकी उपस्थिति को भाँप जायगा और फिर अपने मारे हुए शिकार के पास न आएगा। पर लगता ऐसा है कि चीते ने उन्हें उसी समय देख लिया था, जब वे पेड़ पर चढ़ रहे थे। इसलिए वह उस ओर फटका तक नहीं।

धीरे-धीरे अंधेरा घना होने लगा। कुछ समय बाद स्थिति ऐसी हो गई कि २५ गज़ दूर की चीज़ का भी ठीक निशाना ले पाना सम्भव न रहा। ऐसी दशा में पेड़ पर बैठे रहना व्यर्थ था; क्योंकि यदि चीता आये, तब भी वे उसे सुनिश्चित रूप से गोली नहीं मार सकते थे। अधूरा प्रयत्न करके कौबैंट चीते को भयभीत और सावधान नहीं करना चाहता

था। सारी रात पेड़ पर भी बिता पाना कठिन था, क्योंकि वे इसके लिए तैयार होकर वहाँ नहीं बैठे थे। भूख का प्रश्न तो था ही, सरदी का भी था। पहाड़ी प्रदेश था और रातें खूब ठंडी होती थीं। आखिर दोनों पेड़ से उतर कर गांव की ओर चले।

परन्तु काली अन्धेरी रात में नरभक्षक चीते के प्रदेश में इस प्रकार चलना बहुत खतरनाक काम था। इस चीते के सम्बन्ध में लोगों में यह अफ़वाह थी कि उसमें विलक्षण चमत्कारिक शक्ति है। ज्यों ही कोई असावधान व्यक्ति रात में घर के बाहर पैर रखता, त्योंहि वह चीता उसे आकर दबोच लेता। वह चीता चाहे कहीं भी क्यों न हो, पर उस असावधान व्यक्ति को दबोचने के लिए तुरन्त वहीं आ पहुँचता। और इस समय तो यह मानने के लिए पर्याप्त कारण विद्यमान था कि चीता आसपास ही कहीं विद्यमान था। ऐसी अंधेरी रात में नरभक्षक चीते का मुकाबला करने में बन्दूक से कुछ भी सहायता नहीं मिल सकती। दो आदमियों का साथ होना अवश्य भला था; किन्तु यदि चीता आक्रमण कर ही बैठे, तो दो आदमी मिलकर भी उससे बच नहीं सकते थे।

यद्यपि दिखाई तो कुछ नहीं दिया, किन्तु जिम कौर्बेट को ऐसा आभास हुआ कि जैसे कोई पशु चुपचाप उनका पीछा कर रहा है। वे दोनों थोड़ी-थोड़ी देर बाद मुड़कर अच्छी तरह दूर तक पीछे देख लेते थे, जिससे वही चीता या अन्य कोई पशु उन पर एकाएक आक्रमण न कर बैठे। वे दोनों अत्याधिक सतर्क हो कर चल रहे थे। वस्तुतः इस सतर्कता ने ही उस रात उनके प्राण बचा लिये।

गाँव वहां से लगभग आधा मील दूर था, परन्तु यह आधा मील की दूरी ही उन्हें कोसों लम्बी जान पड़ रही थी। अंधेरा घना था। रास्ता कोई था नहीं। पहाड़ की चढ़ाई का ऊबड़-खाबड़ प्रदेश। उस पर

ऊपर से नरभक्षक चीते का डर ! रास्ता लम्बा प्रतीत होना स्वाभाविक ही था।

बीच में एकाध बार पीछे की ओर से अस्पष्ट सी कोई पदचाप भी सुनाई पड़ी। दोनों रुककर चुपचाप खड़े हो गये, जिससे उस पदचाप को भली-भाँति सुन सकें। पर फिर कुछ सुनाई नहीं पड़ा। कुछ भी दिखाई नहीं पड़ा। दोनों फिर आगे बढ़े। जैसे-तैसे 'राम राम" करके वह लम्बा रास्ता पूरा हुआ। दोनों गाँव में आ पहुँचे। गाँव में सब घरों के दरवाजे अन्दर से बन्द थे। बार २ आवाज देने और खड़काने पर भी किसी ने दरवाजा नहीं खोला। लोगों पर चीते का आतंक इतना अधिक छाया हुआ था।

बड़ी मुश्किल से अन्त में एक घर का दरवाजा खुला। एक आदमी इन्हें अपने साथ उस घर में ले गया, जहाँ इन दोनों के ठहरने का प्रबंध दिन में ही कर दिया गया था। आठ-दस सीढ़ियाँ चढ़कर ये सब दुमंजिले पर पहुँचे। अभी ऊपर पहुँचे मुश्किल से १५ सैकण्ड बीते होंगे कि सीढ़ियों के पास बैठा हुआ एक कुत्ता एकाएक ज़ोर से चीखता हुआ इनकी ओर भागा। उसकी आवाज से स्पष्ट था कि उसने किसी अत्यन्त भयंकर वस्तु को देखा है। उसकी कातर चीख में सम्मुख उपस्थित मृत्यु से बचने की आकुलता स्पष्ट थी। सिवाय चीते के और कोई पशु इस चीख का कारण नहीं हो सकता था। लगता है कि इन दोनों शिकारियों का पीछा करता हुआ यह चीता ठीक सीढ़ियों के ऊपर तक चढ़ आया था। अपनी असावधानता तथा अन्धकार के कारण शिकारी तो उसे देख नहीं पाये, किन्तु कुत्ते की दृष्टि से वह न छिप सका। कुत्ते की चीख को सुनते ही चीता तुरन्त उलटे पाँव लौट गया। शिकारियों ने तुरन्त अपनी बन्दूकें संभालीं और लालटेन लेकर अन्धेरे में चीते को देखने की कोशिश करने लगे। लालटेन के उस धुँधले से प्रकाश में कुछ दिखाई न पड़ा। किन्तु कुत्ते के भौंकने से यह पता चल रहा था कि

चीता एकदम चला नहीं गया है। वह कुत्ते को इस समय भी दिखाई पड़ रहा था, जिससे वह बहुत ही भयभीत होकर लगातार भौंके जा रहा था।

इस समय कुछ भी कर पाना सम्भव नहीं था। उस घने अँधेरे में चीते को ढूँढने के लिये सीढ़ियों से नीचे उतरना मौत के मुँह में जाना था। धीरे-धीरे कुत्ते के भौंकने का आवेग कम हो गया। समझ में आ गया कि चीता आज अपने शिकार से निराश होकर वापस लौट गया है।

वहां से चीता भले ही निराश होकर लौट गया हो, किन्तु उस रात वह भूखा नहीं रहा। थोड़ी दूर जाकर उसने एक मकान का कच्चा दरवाजा तोड़ डाला और उसमें से एक स्त्री को उठा ले गया। यह स्त्री जवान थी। उसका छोटा-सा बालक खाट पर ज्यों का त्यों अछूता पड़ा रह गया। इस दुर्घटना का पता लोगों को अगले दिन चला।

चीते को मारने के कई उपाय किए गए। एक बार उसे ज़हर देकर मारने की भी कोशिश की गई। चीते ने एक गाय को मारा था। उसे वह ज़रा-सा खाकर ही छोड़ गया था। इससे आशा थी कि वह लौट कर फिर उस लाश को खाने के लिए आएगा। जिन स्थानों से चीते ने लाश को खाया था, उन सब स्थानों में पोटाशियम सायनाइड नामक तेज़ ज़हर भर दिया गया। ज़हर इतना काफी भरा गया कि यदि चीता उस स्थान से कुछ भी माँस खा ले, तो फिर किसी तरह जीता न बच सके। वैसे पशुओं में एक सहज बुद्धि होती है, जिससे वे अपने लिए हानिकारक पदार्थों को पहचान लेते हैं और उन्हें नहीं खाते। इसलिए इस बात की सम्भावना कम ही थी कि चीता उस ज़हर वाले भाग को खा ले। परन्तु अगले दिन जब शिकारियों ने जाकर देखा तो उनकी खुशी का ठिकाना न रहा। चीते ने एक ही नहीं, बल्कि उन सभी स्थानों से बहुत-सा माँस खाया हुआ था, जिसमें ज़हर भरा गया था।

अब इसमें सन्देह की गुंजाइश नहीं थी कि चीता मरकर ही रहेगा। पर जब चार-पाँच दिन बाद यह खबर मिली कि दस-बारह मील दूर एक गांव में चीते ने एक और लाश कर दी है, तो शिकारियों की सारी खुशी जाती रही। या तो चीते पर पोटाशियम सायनाइड का कोई असर ही नहीं हुआ था, या फिर उस लाश को उस नरभक्षक चीते के अतिरिक्त किसी अन्य पशु ने खा लिया था। जो भी हो, नरभक्षक चीता अभी भी ज्यों का त्यों विद्यमान था और अपना उपद्रव पहले की ही तरह जारी रखे हुए था।

चीते द्वारा हर नया आदमी मारा जाने पर अखबारों में नये सिरे से शोर मचता था। लोगों में और भी अधिक आतंक छा जाता था। लोगों ने काम करने के लिए खेतों पर जाना छोड़ दिया। चीते के डर के मारे तीर्थ-यात्रियों की संख्या बहुत कम हो गई। इन तीर्थयात्रियों से न केवल मन्दिरों को काफी मोटी आय होती थी, बल्कि रास्ते में बनी हुई चट्टियों के हज़ारों दूकानदारों का निर्वाह भी इनसे ही होता था। केवल एक चीते के कारण सारा प्रदेश हाहाकार कर उठा।

एक बार लोहे का एक मज़बूत शिकंजा लगाकर चीते को फँसाने की कोशिश की गई। जिस प्रकार चूहों को मारने के लिए घरों में एक छोटा-सा स्प्रिंगदार शिकंजा काम में लाया जाता है, उसी नमूने का यह बहुत बड़ा शिकंजा था। इसके स्प्रिंग इतने सख्त थे कि दो आदमी पूरा ज़ोर लगाकर मुश्किल से उन्हें खोल पाते थे। यह निश्चित था कि अगर चीता एक बार इसमें फँस गया, तो किसी भी तरह फिर छूटकर नहीं जा सकेगा।

इस शिकंजे को ऐसी जगह लगा दिया जाता है, जहाँ से चीते के गुज़रने की सम्भावना हो। शिकंजे के सिरों को दबाकर शिकंजे का मुँह खोल दिया जाता है। इससे स्प्रिंग तन जाते हैं। उसके बाद एक लोहे की छड़ को इस प्रकार अटका दिया जाता है कि वह ज़रा-सा

झटका लगते ही अपने स्थान से हट जाय और स्प्रिंगों के ज़ोर से शिकंजा तुरन्त बन्द हो जाय। उस समय जो भी वस्तु शिकंजे में फँस जायगी, वह तब तक उसी में फँसी रहेगी, जब तक कि शिकंजों को खोला नहीं जायगा।

इस चीते के लिए भी इस शिकंजे का प्रयोग किया गया। पर लगता है कि भाग्य बारम्बार इस चीते का साथ दे रहा था। जिस लाश के पास यह शिकंजा लगाया गया था, उसे खाने कोई अभागा आ पहुँचा। वह उस शिकंजे में फँस गया। उसने छूटने की बड़ी कोशिश की। शिकंजे में से तो उसका पैर नहीं छूट सका, किन्तु जिस खूँटे के द्वारा शिकंजा जमीन में गड़ा हुआ था, वह उखड़ गया। यद्यपि शिकंजे का वजन एक मन से कम नहीं था, किन्तु अपनी घबराहट में लकड़बग्घा उस शिकंजे को घसीटता हुआ भाग चला। पर यह काम आसान नहीं था। ऊबड़-खाबड़ भूमि पर एक मन वजनी उस शिकंजे में फँसे हुए अपने पैर को लेकर वह दूर तक नहीं जा सकता था। पर अपनी वन्य स्वाधीनता वृत्ति के कारण उसने शिकंजे से छूटने के लिए अपनी जान की बाजी लगा दी। छूट वह नहीं सका, किन्तु अगले दिन जब वह शिकारियों को मिला, तब वह मर चुका था। उसकी ज़ोरदार उठा-पटक के कारण शिकंजे के तीन-चार बड़े-पड़े दाँते टूट गए थे और शिकंजा भविष्य के लिए बेकार हो गया था।

इन सब उपायों के असफल हो जाने पर अन्त में फिर उसी परम्परागत उपाय का अवलम्बन करना पड़ा, जिससे पहले कई बार असफलता हो चुकी थी और जिससे इस धूर्त चीते का मार पाना असम्भव समझा गया था। अन्य नये उपायों को अजमा लेने के बाद फिर उसी पुराने तरीके पर लौट आना आवश्यक हो गया था। यह तरीका किसी भेड़ या बकरी को ललचाव के तौर पर बाँधकर शिकार की प्रतीक्षा करने और उसके आने पर गोली मार देने का था। बाघ या चीते

का शिकार करने के लिए सब से अधिक इसी उपाय का प्रयोग किया जाता है।

हाल में ही चीता रुद्रप्रयाग से कुछ दूर एक और चट्टी के पास देखा गया था। कौबेंट ने उसी इलाके में बकरी बाँधकर चीते की प्रतीक्षा करने का निश्चय किया। बस्ती बिलकुल पास ही थी। परन्तु इस चीते को रात के समय बस्तियों में आते कोई हिचक नहीं होती थी। कौबेंट शाम के समय सारी रात पेड़ पर ही बिताने का निश्चय करके मचान पर जा बैठा। यह मचान भूमि से काफी ऊपर घनी डालियों की आड़ में बनाया गया था। बकरी पेड़ की जड़ के पास ही ठीक रास्ते में बाँध दी गई थी।

रात बीतने लगी। अँधेरा काफी था; फिर भी पेड़ के नीचे बंधी हुई बकरी धुंधली-धुंधली सी दिखाई पड़ जाती थी। शिकारी अत्यन्त सावधान होकर मचान पर बैठा रहा। वह अंधेरे में देखता हुआ जंगल में होने वाली प्रत्येक आवाज़ की ओर ध्यान लगाये हुए था। शायद चीते की कोई आवाज़ या आहट सुनाई पड़ सके। पर कोई आहट सुनाई नहीं पड़ी।

लगभग दो बजे का समय होगा। एकाएक पेड़ के नीचे बँधी हुई बकरी उठकर खड़ी हो गई। उसके गले में बंधी हुई घंटी की आवाज़ सुन कर शिकारी चौंक उठा। उसने ध्यान से पेड़ के नीचे देखना शुरू किया। बकरी के उठ खड़े होने से यह स्पष्ट था कि कोई न कोई हिंस्र पशु उसके पास आ पहुँचा है, जिसके भय से वह उठकर खड़ी हो गई है।

बकरी पेड़ के तने के साथ सटकर खड़ी हुई थी। कुछ देर तक शान्ति रही। उसके बाद एकाएक कोई पशु उछलकर बकरी पर टूट पड़ा। अंधेरे में यह स्पष्ट दिखाई न पड़ा कि पशु कौन-सा है, किन्तु उसकी गुर्राहट को सुनकर सन्देह न रहा। यह चीता ही था। शिकारी

इतने दिन से इसी समय की प्रतीक्षा कर रहा था। वह अनिश्चित दशा में गोली नहीं चलाना चाहता था। बन्दूक संभाल कर वह उचित अवसर की प्रतीक्षा करने लगा।

बकरी एक मजबूत रस्सी से पेड़ से बँधी हुई थी, जिससे चीता उसे एकाएक उठाकर भाग नहीं सकता था। उसने बकरी को दो-एक झटके दिये, जिनके कारण वह जोर-जोर से मिमिया उठी। चीते ने बकरी को जमीन पर गिरा दिया और उसे भंभोड़ने लगा। इस समय बकरी जमीन पर नीचे थी और चीता उसके ऊपर था। निशाना लगाने के लिए इससे अच्छा और अवसर मिलना कठिन था। शिकारी ने अंधेरे में जितना भी सम्भव हुआ, निशाना साधा और बन्दूक का घोड़ा दबा दिया।

गोली छूटने की आवाज रात के सन्नाटे को चीरती हुई चारों ओर की पहाड़ियों में गूँज उठी। चीता बकरी को छोड़कर बड़े जोर से उछला। अगले ही क्षण वह पहाड़ी से ढलान की ओर नीचे को दौड़ पड़ा।

आस-पास के मकानों में लोग जाग उठे और उत्सुकता से शोर मचा-मचाकर पूछताछ करने लगे। शिकारी ने उनसे कहा कि वे मकानों से बाहर न आयें। बाहर आने पर इस बात का पूरा खतरा था कि घायल चीता आस पास ही कहीं छिपा बैठा हो और उनमें से किसी पर हमला कर बैठे।

सवेरा होने पर शिकारी पेड़ से उतरा। आस पास के घरों से निकलकर लोग बाहर आ गये। बकरी अभी तक पेड़ के नीचे बँधी हुई थी। वह घायल अवश्य हो गई थी, किन्तु मरी नहीं थी। लगता है कि चीते को गोली का भरपूर घाव लगा था क्योंकि खून की बड़ी बड़ी बूंदों की पंक्ति उस ओर जाती दिखाई पड़ रही थी जिस ओर चीता गया था। इस पंक्ति को देखने से मालूम होता था कि इतना बड़ा घाव होने

के बाद चीता जीवित नहीं रह सकेगा। वह अब जहाँ भी मिलेगा मरा हुआ ही मिलेगा।

कुछ देर बाद खोज प्रारम्भ की गई। इतना मर्मभेदी आघात सह कर भी चीता लगभग दो फ़र्लांग भाग गया था। खोजने वालों को एक झाड़ी के पास पड़ा हुआ उसका देह दिखाई दिया। सब सावधान हो गये। घायल चीते के पास जाने से पहले यह जान लेना आयवश्यक था कि वह मर गया है या जीवित है। अगर वह जीवित हो तो···? सबके शरीर में एक सिहरन दौड़ गई। एक पत्थर फेंक कर देख गया। पत्थर चीते को लगा, किन्तु उसके शरीर में कोई हलचल न हुई। फिर भी आशंका बनी ही रही। सावधानी से बढ़ते हुए सब उसके पास पहुँचे। चीता सचमुच मर चुका था।

यह चीता नरभक्षक चीता ही था, क्योंकि इसके अगले पंजे में से नाखून समेत एक अंगुली गायब थी। यह अंगुली नदी के पुल पर एक शिकारी की गोली से कट कर उड़ गई। इस चीते के मरने की खबर तुरन्त-आस पास के सब गाँवों में फैल गई और हजारों की संख्या में लोग उस चीते को देखने के लिये आने लगे, जिसने उन्हें कई वर्षों से आतंकित किया हुआ था।

पर्ल हार्बर पर आक्रमण १०

द्वितीय विश्व-युद्ध में जब जापान ने युद्ध में प्रवेश किया, तब पहले ही दिन जापानी विमानों ने पर्ल हार्बर पर आक्रमण करके अमेरिकन जलसेना को इतनी क्षति पहुँचाई थी कि बहुत समय तक उसे पूरा कर पाना सम्भव न हुआ। पर्ल हार्बर पर किए गए इस आक्रमण की योजना पहले से ही बना ली गई थी। इस महत्वपूर्ण आक्रमण का यह वर्णन आक्रमणकारी विमानों के नायक कप्तान मित्सुओ फूचीदा ने प्रस्तुत किया है :

सितम्बर १९४१ ई० में ही अमेरिका और जापान के सम्बन्धों में कटुता आ चली थी और जापानी सेनानायकों को उसी समय आदेश दे दिया गया था कि वे युद्ध के लिए तैयार रहें। यदि अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में सुधार न हो, तो दिसम्बर के प्रारम्भ में जापान के युद्ध में कूद पड़ने की सम्भावना थी। जापान की ओर से युद्ध में कूदने पर पहला काम यह होना था कि हवाई द्वीपसमूह में स्थित पर्ल हार्बर पर आक्रमण करके वहाँ अमेरिका की जलसेना की शक्ति को कुचल दिया जाय। इस आक्रमण की तैयारी के लिए सितम्बर में आदेश भी दे दिए गए थे।

सितम्बर से लेकर नवम्बर के मध्य तक वायु-सैनिकों को आक्रमण का अभ्यास कराया जाता रहा। नवम्बर के मध्य में सब विमान विमान-वाहक जहाजों पर पहुँचा दिए गए। जापान का विशाल जहाजी बेड़ा, जिसमें ६ विमानवाहक जहाज तथा २२ अन्य प्रकार के युद्धपोत थे,

क्युराइल द्वीपों को रवाना हुआ। उस समय तक भी अमेरिका के साथ कूटनीतिक चर्चाएँ चल रही थीं। इसलिए आक्रमण का निश्चय अन्तिम रूप से नहीं किया गया था। जहाजों को यह आदेश था कि यदि सन्धि-चर्चा असफल रही, तो उन्हें आक्रमण करने को कहा जायगा, अन्यथा वे यों ही वापस लौट आयेंगे। इस आक्रमण-अभियान के अध्यक्ष उप जल-सेनापति नागुमो थे।

जापानी सैनिकों में बहुत उत्साह था। उनमें से प्रायः सभी का खयाल यह था कि अब वे लौटकर अपनी मातृभूमि के दर्शन न कर सकेंगे। "बांजाइ-बांजाइ" कहकर उन्होंने इष्टबन्धुओं से विदा ली। जहाज़ी बेड़े के सब जहाज़ अलग-अलग दिशाओं में चले। यद्यपि इन सब जहाज़ों ने पहुँचना क्युराइल द्वीपों में ही था, फिर भी एक साथ चलने से इस बात की आशंका थी कि आकाश में उड़ता हुआ कोई अमेरिक विमान यदि इतनी बड़ी जलसेना को इकट्ठा देख लेगा, तो वह अवश्य उसकी सूचना अपनी जलसेना को दे देगा और फिर अमेरिकन सतर्क हो जायेंगे। अलग-अलग दिशाओं में जाते हुए जहाजों पर किसी को सन्देह नहीं हो सकता था।

जापानी जहाज़ ऐल्यूशियन द्वीपों तथा मिडवे द्वीपों के बीच में से होते हुए आगे बढ़े। उन्हें सूचना मिली थी कि अमेरिकन विमान ६०० मील तक उड़ानें करके समुद्र पर पहरा देते हैं। इसलिए इस जलसेना ने उनकी पहुँच से बाहर ही रहना श्रेयस्कर समझा। तीन पनडुब्बियाँ आगे भेज दी गईं, जिससे यदि कोई भी व्यापारिक जहाज दिखाई पड़े, तो वे उसकी सूचना तुरन्त दे सकें। सब जहाज़ अमेरिकन पनडुब्बियों से बचने के लिए भी पूरी तरह सावधान थे। जहाजों से कोई भी रेडियो-सन्देश नहीं भेजा जाता था, क्योंकि उससे इस बात का भय था कि जहाज़ों के रेडियो की आवाज़ शत्रु के रेडियो-स्टेशनों को सुनाई पड़ सकती है और सन्देश समझ में न आने पर भी वे समुद्र में चल रहे, जापानी जहाजों

की भनक पा सकते हैं। तोकियों तथा होनोलूलू से प्रसारित होने वाले कार्यक्रम जहाजों पर सुने अवश्य जाते थे। आशा थी कि शायद इन कार्यक्रमों से युद्ध छिड़ जाने के सम्बन्ध में कोई जानकारी प्राप्त हो जाय।

२७ से लेकर ३० नवम्बर तक जापान में सरकार तथा सेना के उच्च अधिकारी अमेरिका के २६ नवम्बर वाले शान्ति-प्रस्ताव पर विचार करते रहे। अन्त में वे इस निश्चय पर पहुँचे कि अमेरिका का यह प्रस्ताव जापान को दबाने के लिए युद्ध की धमकी के अतिरिक्त कुछ नहीं है। ऐसी दशा में युद्ध के सिवाय उपाय भी कोई नहीं था। पर शान्ति-चर्चा को अभी और कुछ समय तक चलाया जाना चाहिए।

अब आगे कप्तान फूचीदा के अपने ही शब्दों में सुनिए :

युद्ध करने का निर्णय १ दिसम्बर को किया गया था। अगले ही दिन जनरल स्टाफ ने आदेश जारी कर दिए : "आक्रमण का दिन ८ दिसम्बर होगा।" यह आदेश पाते ही हमारे जहाजों का दल मुड़कर एकदम सीधा पर्ल हार्बर की ओर चल पड़ा। अब सन्देह या हिचकिचाहट की गुँजाइश कहाँ थी ?

८ दिसम्बर को रविवार पड़ता था। आक्रमण के लिए सम्भवतः रविवार का दिन इसलिए चुना गया था, क्योंकि हमें पता चला था कि अमेरिकन बेड़ा सारे सप्ताह में समुद्र में अभ्यास करने के बाद शनिवार को वापस बन्दरगाह में लौट जाता है। इसी दिन मलाया में भी जापानी सेना का आक्रमण प्रारम्भ किया जाना था।

अमेरिकन बेड़े के सम्बन्ध में गुप्तचर-विभाग द्वारा प्राप्त समाचार तोकियो से रेडियो द्वारा हमारे पास बराबर भेजे जा रहे थे। ७ दिसम्बर को खबर आई कि पर्ल हार्बर में युद्धपोतों के चारों ओर बचाव के लिए गुब्बारे या तारपीडो-जाल नहीं लगे हैं। सब युद्धपोत बन्दरगाह में खड़े हैं। रेडियो की गतिविधि से इस बात का कोई संकेत नहीं मिलता कि अमेरिकन विमान पहरेदारी के लिए समुद्र में दूर-दूर तक उड़ानें कर

रहे हों। विमानवाहक 'लैक्सिंगटन' और 'ऐंटरप्राइज' बन्दरगाह से समुद्र की ओर रवाना हो गए हैं।

इसी समय हमें जलसेनापति यामामोतो का सन्देश प्राप्त हुआ : "साम्राज्य का भविष्य आप लोगों के इसी आक्रमण पर निर्भर है। प्रत्येक सैनिक अपने कर्तव्य को निभाने के लिए जी-जान से प्रयत्न करे।"

८ दिसम्बर को प्रातःकाल से काफ़ी पहले ही हम पर्ल हाबर के २३० मील निकट तक पहुँचे थे। विमानवाहक जहाज़ों ने अपनी दिशा मोड़ी और उत्तरी वायु की ओर मुख करके आगे बढ़ने लगे। सब मस्तूलों पर युद्ध के झण्डे फहरा दिए गए। उस समय बूँदाबाँदी के कारण जहाज़ों पर फिसलन बहुत थी, इसलिए पहले-पहल अन्धेरे में उड़ान प्रारम्भ करना कुछ कठिन प्रतीत हुआ। पर अन्त में मैंने निश्चय किया कि उड़ान शुरू की जा सकती है। सब विमानवाहकों पर विमानों के इंजनों की घरघराहट प्रारम्भ हुई, जिससे विमानवाहकों के डैक थर्राने लगे।

एक हरी लालटेन हिलाकर विमानों को उड़ चलने का आदेश दिया गया। हमारे विमानवाहक पर सब से आगे खड़े हुए लड़ाकू विमान की घरघराहट तेज़ और तेज़ होती गई, और वह दौड़कर सफ़ुशल आकाश में उड़ गया। एक के बाद एक विमान आकाश में उठने लगा। हर विमान के उड़ने पर जोर की तालियाँ बज उठती थीं।

छः विमानवाहक जहाज़ों से पन्द्रह मिनट के अन्दर १८३ विमान, जिनमें लड़ाकू विमान, बमवर्षक, तथा तारपीडो छोड़ने वाले विमान सम्मिलित थे, उड़ चले। अभी तक आकाश में घना अंधेरा छाया हुआ था। विमान अपने से अगले विमानों की रोशनियों को देख-देखकर व्यूह-रचना करने लगे। कुछ देर तक इस प्रकार अपने जहाज़ों के ऊपर उड़ते रहने के बाद ठीक ६ बजकर १५ मिनट पर हम दक्षिण की ओर रवाना हो गये।

सीधे मेरी कमान में ४९ बमवर्षक थे। मेरे दाईं ओर थोड़ा सा

नीचाई पर ४० तारपीडो-विमान थे। मेरे बाईं ओर ६०० फीट की ऊँचाई पर ५१ झपट्टामार बमवर्षक थे। इस सारे व्यूह की रक्षा करते हुए ४३ लड़ाकू-विमान चल रहे थे।

पर्ल हार्बर ओआहू नामक द्वीप पर स्थित है। ७ बजे के लगभग मैंने हिसाब लगाकर अनुमान किया कि हम एक घंटे से भी पहले वहाँ पहुँच जायँगे। आकाश में बादल छाये हुए थे। इसलिए हमें नीचे समुद्र दिखाई नहीं पड़ रहा था। अपने लक्ष्य की ओर ठीक दिशा पहचानने में कठिनाई हो रही थी। मैंने रेडियो द्वारा दिशा जानने के लिए होनोलूलू रेडियो पर सुई की। कुछ ही देर में होनोलूलू का संगीत सुनाई पड़ने लगा। रेडियो दिग्दर्शक ने ठीक उस दिशा की ओर संकेत कर दिया, जिस ओर से वह ध्वनि आ रही थी। हम सही दिशा से थोड़ा-सा भटक गये थे। अब हमने अपना रुख सही दिशा की ओर कर लिया।

कुछ देर बाद होनोलूलू रेडियो पर ऋतु का समाचार सुनाई पड़ा। रेडियो कह रहा था: "कहीं-कहीं बादल छाये हैं। अधिकांश बादल पहाड़ी प्रदेशों में हैं। दूर तक की चीजें साफ दिखाई पड़ती हैं। वायु उत्तर की ओर से १२ मील प्रतिघंटे की चाल से चल रही है।"

इससे अधिक अच्छे मौसम की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। द्वीप पर बादलों के बीच-बीच में खुले स्थान भी होंगे। साढ़े सात बजे एकाएक बादल फट गये और समुद्र के नीले जल में द्वीप की लम्बी सफेद तटरेखा दिखाई पड़ी। हम लोग द्वीप के उत्तरी छोर पर आ पहुँचे थे। अब हमें अलग-अलग हो जाना था।

दो-एक विमान आगे इसलिए भेज दिए गए थे कि वे पहले जाकर बन्दरगाह में खड़े हुए जहाजों के सम्बन्ध में सूचना दें। इन्होंने १० युद्ध-पोतों तथा ११ अन्य जहाजों का ठीक-ठीक पता-ठिकाना रेडियो द्वारा हमें सूचित कर दिया था। जब हम अपने लक्ष्य तक पहुँचे, तो बादल फटकर बिलकुल साफ हो गये थे। मैंने दूरबीन से बन्दरगाह को देखा।

उसमें सब जहाज़ ठीक उसी दशा मे विद्यमान थे, जिसमें होने की हमें सूचना मिली थी। इस समय ७ बजकर ४९ मिनट हुए थे। मैंने रेडियो द्वारा सब विमानों को आक्रमण करने के लिये आदेश दिया।

सबसे पहले हमने हिकम के हवाई अड्डे पर बम गिराये, जहाँ अमेरिकनों के भारी बमवर्षक जमा थे। उसके बाद फ़ोड द्वीप तथा व्हीलर हवाई अड्डे पर बमवर्षा की गई। कुछ ही देर में धुँए के गुब्बार आकाश की ओर उठते दिखाई पड़ने लगे।

मेरे बमवर्षकों की टुकड़ी बढ़ती हुई द्वीप के दक्षिणी छोर की ओर पहुँची। वहाँ से मुड़कर हम द्वीप के पूर्वी तट पर आ गए। इस समय आकाश में केवल हमारे जापानी विमान ही उड़ रहे थे। शत्रु का कोई विमान आकाश में नहीं था। बन्दरगाहों मे खड़े हुए जहाज बिलकुल निश्चिन्त दिखाई पड़ रहे थे और होनोलूलू रेडियो अब तक भी अपना नियमित कार्यक्रम विस्तारित कर रहा था। स्पष्ट था कि हम बिलकुल अचानक और [illegible] आक्रमण करने में सफल रहे थे।

मुझे ध्यान आया कि जापानी जनरल स्टाफ हमारे इस आक्रमण का परिणाम जानने के लिए बहुत उत्सुक होगा। इसलिए मैंने अपने

जहाज़ी बेड़े पर उपजलसेनापति नागुमो के पास सन्देश भेजा : "हम बिलकुल अचानक आक्रमण करने में सफल रहे हैं। कृपया यह सन्देश तोकियो भेज दें।"

तभी मैंने देखा कि पानी में जहाज़ों के आसपास जलबवंडर से उठने शुरू हो गये हैं। हमारे तारपीडो-विमानों ने अपना काम शुरू कर दिया था। हमारा अपना आक्रमण शुरू करने का समय भी आ गया था। मैंने अपने विमानचालक को आदेश दिया कि वह विमान को तिरछा करके उड़ाये। यह आक्रमण के लिए संकेत था। हमारी टुकड़ी के ४९ बमवर्षक देखते-देखते एक पंक्ति में हो गये। हर विमान अगले विमान से ६०० फीट पीछे था। यह व्यूह-रचना अत्यन्त आकर्षक थी।

ज्योंही मेरी टुकड़ी के बमवर्षक बम गिराने के लिए नीचे झुके, त्योंही जहाज़ों तथा तट पर लगी हुई अमेरिकन विमानवेधी तोपें सचेष्ट हो उठीं। उनके गोले हमारे विमानों के आसपास से होकर गुजर जाने लगे और सारे आकाश में जगह-जगह भूरे-काले धुएँ के धब्बे से दिखाई पड़ने लगे। इन गोलों के कारण हमारे विमान काँप-काँप जाते थे।

अमेरिकनों की यह रक्षात्मक कार्यवाही बहुत जल्दी शुरू हो गई थी। पहला बम भूमि पड़े मुश्किल से पाँच मिनट बीत पाए होंगे कि उनकी विमानवेधी तोपें चालू हो उठीं।

मेरी टुकड़ी अब 'नेवादा' युद्धपोत पर बम गिराने के लिए बढ़ी। यह जहाज़ युद्धपोतों की पंक्ति में सबसे आखिरी सिरे पर खड़ा था। हम बम गिराने को तैयार ही थे कि तभी एक बादल बीच में आ गया। हमारी टुकड़ी के सबसे अगले विमानचालक ने हाथ हिलाकर संकेत किया कि अभी बम गिराने के लिए अगले चक्कर की प्रतीक्षा करनी होगी। हम बिना बम गिराए ही आगे गुज़र गए और होनोलूलू के ऊपर उड़ते हुए अगले अवसर की प्रतीक्षा करने लगे। इस बीच में अन्य टुकड़ियाँ बम गिराती रहीं। कुछ टुकड़ियों को बम गिराने का अवसर तीन बार

असफल झपट्टा मारने के बाद मिल पाया।

एकाएक युद्धपोतों की पंक्ति में एक महाभयावह विस्फोट हुआ। काले-लाल से धुँए का गुब्बार उठता हुआ १,००० फीट की ऊँचाई तक आ पहुँचा। इस विस्फोट का धक्का हमारे विमानों तक को अनुभव हुआ। ऐसा लगा कि किसी बारूदघर में यह धड़ाका हुआ है। इस समय आक्रमण पूरे ज़ोरों पर था। पर्ल हार्बर के ऊपर का सारा आकाश धुँए और विस्फोटों के शोर से भर रहा था।

मैंने दूरबीन से युद्धपोतों की कतार की ओर देखा तो पता चला कि वह विस्फोट 'ऐरिज़ोना' जहाज़ में हुआ था। इस समय उसमें से ज़ोर की लपटें निकल रही थीं। उसका धुँआ 'नेवादा' पर छाया हुआ था, इसलिए 'नेवादा' पर ठीक निशाना बाँध पाना कठिन था। हमने 'नेवादा' को छोड़कर एक और जहाज़ 'मेरीलैंड' को बमवर्षा के लिए चुना। यह जहाज़ 'टैनेसी' जहाज़ के पास खड़ा था। 'टैनेसी' बुरी तरह जल रहा था। गोले बरसाती हुई विमानवेधी तोपों के बीच में होकर हमने एक बार फिर आक्रमण किया।

सबसे अगले विमान ने बम गिराया, और साथ ही अन्य विमानों ने भी बम गिराने शुरू कर दिए। मेरे विमान ने चार बम गिराए। बम छोड़ने के साथ ही मैं विमान के फर्श पर झुककर नीचे की ओर देखने लगा, जिससे जान सकूँ कि परिणाम क्या रहा। बम तेज़ी से नीचे की ओर गिरते गए। उनके आकार छोटे-छोटे होते गये और अन्त में तो वे बिलकुल छोटे-छोटे बिन्दुओं के बराबर बनकर समुद्र-तल तक पहुँचे। बहुत ऊँचाई से समुद्र में जा गिरने वाले बम जहाज़ पर ठीक जा गिरने वाले बमों की अपेक्षा कहीं अधिक साफ पहचाने जाते हैं। कारण यह है कि समुद्र में गिरने वाले बमों के कारण पानी में गोलाकार तरंगें उठती हैं, जो स्पष्ट दिखाई पड़ जाती हैं। जब इस प्रकार की तरंगे केवल दो जगह उठती दिखाई पड़ीं, तो मैंने समझ लिया कि हमारे दो

बम ठीक जहाज़ के ऊपर जाकर गिरे हैं। अवश्य ही इन बमों से काफी नुकसान हुआ होगा।

विमान बम गिराने का काम पूरा कर चुके थे, उन्हें मैंने वापस अपने विमानवाहक जहाज़ों पर लौट जाने का आदेश दिया। पर मेरा अपना विमान वहीं रहा, जिससे मैं वहाँ की स्थिति का निरीक्षण कर सकूँ और आगे होने वाली कार्यवाही का संचालन करता रह सकूँ।

पर्ल हार्बर और उसके आस-पास के सारे क्षेत्र में विनाश ही विनाश दिखाई पड़ रहा था। 'ऊटाह' जहाज़ उलट गया था। 'वैस्ट विर्जिनिया' और 'ओकलाहोमा' के पार्श्वभाग तारपीडो की चोटों से बुरी तरह फट गए थे। वे एक ओर को झुक गए थे और उनके चारों ओर दूर-दूर तक पानी पर तेल तैर रहा था। 'ऐरिज़ोना' भी एक ओर को बुरी तरह झुका हुआ था और जल रहा था। 'मेरीलैंड' तथा 'टैनेसी' में भी आग लगी हुई थी। केवल 'पैनसलवेनिया' ही एक ऐसा जहाज़ था, जो अछूता खड़ा था। उस पर, लगता है कि आक्रमण ही नहीं किया गया था।

हमारे विमानों के प्रथम दल को अपना काम पूरा करने में एक घंटा लगा। इस आक्रमण में हमारे तीन लड़ाकू विमान, एक झपट्टामार बमवर्षक और पाँच तारपीडो विमान नष्ट हो गए। अभी पहले विमान अपने विमानवाहकों की ओर लौटे ही थे कि १७१ विमानों का एक और नया दल आक्रमण करने के लिए आ पहुँचा।

इस बार कठिनाई यह थी कि जगह-जगह से धुँआ उठ रहा था, जिसके कारण नीचे अपने लक्ष्यों को देख पाना बहुत कठिन हो गया था। इसके अतिरिक्त विमानवेधी तोपों की गोलाबारी भी बहुत भयंकर हो उठी थी। यह दूसरा आक्रमण भी एक घण्टे तक जारी रहा। जो जहाज़ पूरी तरह नष्ट-भ्रष्ट नहीं हुए थे, उन पर तथा अन्य नए जहाज़ों तथा सैनिक महत्व के ठिकानों पर हमने बम गिराए। इस आक्रमण में हमारे

२० विमान काम आए और वे वापस नहीं लौट सके।

जब विमानों का यह दूसरा दल भी वापस लौट गया, तब मैंने यह जाँचने की कोशिश की कि हम कितनी सफलता प्राप्त कर पाए हैं। चार युद्धपोत हमने पूरी तरह निश्चित रूप से डुबा दिए थे। तीन बुरी तरह टूट-फूट गए थे। एक और युद्धपोत को काफी नुकसान पहुँचा था। इसके अतिरिक्त अन्य कई प्रकार के बीसियों जहाज़ डुबा दिए गए थे। हवाई अड्डों तथा विमानों को भी भारी क्षति पहुँचाई गई थी। धुँए के बादलों के कारण हवाई अड्डों पर नुकसान का ठीक-ठीक अनुमान नहीं लगाया जा सका, पर इसमें सन्देह नहीं था कि द्वीप पर स्थित अमेरिकन वायु सेना को बहुत अधिक क्षति पहुँची है।

तीन घण्टे तक मेरा विमान पर्ल हार्बर के ऊपर रहा। इन तीन घण्टों में हमें एक भी अमेरिकन विमान का सामना नहीं करना पड़ा। जब मैं लौटकर वापस अपने विमानवाहक पर पहुँचा, तो वहाँ विमानों को फिर नए आक्रमण के लिए तैयार किया जा रहा था। मुझे एकदम उपजलसेनापति नागुमो के पास बुलाया गया। मेरे पहुँचने से पहले, लगता है कि, वहाँ इसी विषय पर विवाद हो रहा था कि एक और आक्रमण किया जाय या नहीं। मैंने जाकर आक्रमण का सारा विवरण सुना दिया और यह भी बता दिया कि शत्रु का कितना नुकसान हुआ है। साथ ही मैंने यह भी कहा कि अभी भी वहाँ ऐसे कई महत्वपूर्ण ठिकाने हैं, जिन पर आक्रमण किया जाना चाहिए।

परन्तु उपजलसेनापति नागुमो का विचार यह बना कि अब और आक्रमण की आवश्यकता नहीं है। (उनके इस निश्चय की बाद में अत्यन्त कठोर आलोचना भी की गई)। उन्होंने वापस लौटने का निश्चय किया। तुरन्त सब जहाजों को झण्डियों द्वारा सूचना दे दी गई और सारा बेड़ा तेज़ी से उत्तर को लौट पड़ा।